अध्याय–9

आचरण और संसदीय शिष्टाचार के नियम

सामान्य बातें

ऐसे कतिपय सुस्थापित संसदीय रीति–रिवाज, परंपराएं, शिष्टाचार और नियम हैं जिनका सदस्यों द्वारा सदन के भीतर और बाहर अनुसरण किया जाना आवश्यक है। वे पिछली प्रथाओं, पीठासीन अधिकारियों द्वारा समय–समय पर दी गई व्यवस्थाओं और उनके द्वारा की गई टिप्पणियों तथा राज्य सभा में प्रक्रिया तथा कार्य–संचालन विषयक नियमों पर और संसद् की उन अलिखित परंपराओं पर आधारित हैं जिनका ज्ञान किसी सदस्य को संसद् में अपने व्यक्तिगत अनुभव के द्वारा होता है। इन सबको तकनीकी रूप से संसदीय शिष्टाचार कहा जाता है।[1]

> 13 मई, 1952 को राज्य सभा की पहली बैठक के कुछ दिन पूर्व राज्य सभा संसदीय समाचार में ''संसदीय शिष्टाचार'' शीर्षक के अंतर्गत एक पैरा प्रकाशित हुआ था।[2] इसमें ऐसे कुछ महत्त्वपूर्ण नियम, जिनकी संख्या 27 थी, दिए गए थे जिनका सदन के भीतर अनुसरण करने की सामान्यत: आशा की जाती थी। एक सदस्य ने 16 मई, 1952 को इस आधार पर उक्त संसदीय समाचार पर आपत्ति की कि वह सदन के सदस्यों के विशेषाधिकारों के अनुरूप नहीं है। अत: सदस्य ने मांग की कि उस संसदीय समाचार को वापस ले लिया जाए। सभापति का कहना था कि संसदीय समाचार में उन प्रथाओं का उल्लेख किया गया है जिनका अब तक अनुसरण होता रहा है और जो केवल सदस्यों के मार्गदर्शन के लिए हैं और इनमें से अधिकांश नियम संसदीय शिष्टाचार के नियम हैं जिनका विश्वभर की संसदों द्वारा अनुसरण किया जाता है। सभापति का यह भी कहना था कि चूंकि कुछ सदस्य सदन के लिए नए हैं इसलिए ये सुझाव दिए गए हैं।[3] (तथापि इसके पश्चात् उक्त संसदीय समाचार की पुनरावृत्ति नहीं की गई।)

विभिन्न प्रथाओं और परंपराओं का उल्लेख अब 'हैंडबुक फॉर मेम्बर्स' नामक पुस्तिका में किया जाता है जिसे समय–समय पर सचिवालय द्वारा जारी किया जाता है। एक प्रकार से इनके द्वारा सदस्यों का मार्गदर्शन किया जाता है ताकि वे जान सकें कि संसद्–सदस्य के रूप में उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। सामान्यत: यह कहा जा सकता है कि सदस्यों का आचरण ऐसा होना चाहिए जिससे सदन और उसके सदस्यों की गरिमा बढ़े। दूसरे शब्दों में सदस्यों का आचरण प्रचलित प्रथाओं और परंपराओं के विरुद्ध नहीं होना चाहिए या सदन की गरिमा और प्रतिष्ठा को ठेस लगाने वाला नहीं होना चाहिए या उन प्रतिमानों के विपरीत नहीं होना चाहिए जिनका अनुसरण करने की उनसे सदन द्वारा आशा की जाती है। यथार्थत: किस प्रकार का आचरण अशोभनीय है या अवांछनीय है इसकी पूर्ण रूप से परिभाषा नहीं की गई है। सदन को प्रत्येक मामले को जांचने–परखने की शक्ति है। सदन की विशेषाधिकार समिति सदस्यों द्वारा सदन के विशेषाधिकार के भंग होने के मामलों की जांच कर सकती है। इसके अलावा सदन अपने किसी सदस्य के आचरण की जांच के लिए एक तदर्थ समिति भी नियुक्त कर सकता है ताकि यह तय हो सके कि क्या सदन के किसी सदस्य का कोई आचरण सदन की गरिमा को कम करता है और इसलिए उन प्रतिमानों के अनुरूप नहीं है जिनकी सदन उनसे आशा करता है। सदन ने 1976 में एक ऐसी तदर्थ समिति नियुक्त की थी।[4]

दोषी सदस्य को दंडित किया जाना

सदन को यह अधिकार है कि वह किसी सदस्य द्वारा सदन के भीतर या बाहर किए गए अभद्र आचरण के लिए उसे दंडित करे। सदस्यों के अभद्र आचरण या उनके द्वारा की गई अवमानना के मामलों में सदन भर्त्सना, धिक्कार, सदन से बाहर चले जाने के आदेश, सदन की सेवा से निलम्बित करने, बंदीकरण और सदन से निष्कासित करने का दंड दे सकता है।

> मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने मध्य प्रदेश विधान सभा के दो सदस्यों के निष्कासन को यह कहते हुए वैध ठहराया कि चूंकि विधान सभा को किसी सदस्य को निष्कासित करने की शक्ति और विशेषाधिकार प्राप्त है जिसके फलस्वरूप उसका स्थान रिक्त हो जाता है इसलिए संबंधित सदस्यों को निष्कासित करने वाले संकल्पों की यथार्थता, वैधता या औचित्य को न्यायालयों में चुनौती नहीं दी जा सकती।[5]

> तथापि, पंजाब तथा हरियाणा उच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार किसी राज्य विधान-मंडल को यह शक्ति नहीं है कि वह सदन की अवमानना के दंडस्वरूप किसी विधिवत् निर्वाचित सदस्य को निष्कासित करे। न्यायालय ने अन्य बातों के साथ यह टिप्पणी की कि यह ''सुविदित है और सुनिर्धारित किया जा चुका है कि सदन की अवमानना का दंड धिक्कारना, निलंबन और जुर्माना है और अंततः इस संबंध में मुख्य बात यह है कि अवमानना करने वाले को कारावास का दंड देने की शक्ति दी गई है।''[6]

जो अपराध काफी गंभीर नहीं हैं उनके लिए भर्त्सना करने या धिक्कारने (फटकारने) का दंड दिया जाता है। भर्त्सना करना धिग्दण्ड का एक हल्का रूप है; धिग्दण्ड दोनों में से अधिक गंभीर दंड है।[7] यद्यपि राज्य सभा के किसी सदस्य की भर्त्सना नहीं की गई है और उसे धिग्दण्ड नहीं दिया गया है तथापि एक बार कार्यावलि में एक ऐसे सदस्य के आचरण की निंदा करने के प्रस्ताव का उल्लेख था जिसने राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान व्यवधान डाला था और इस प्रस्ताव पर चर्चा हुई थी किंतु यह चर्चा असमाप्त रही।[8]

आचरण की भर्त्सना

ऐसे कुछ अवसर आए हैं जब सभापीठ ने किसी सदस्य के अभद्र आचरण या अनुचित व्यवहार पर प्रतिकूल टिप्पणी की है या ऐसे आचरण की भर्त्सना की है।

> एक बार जब एक सदस्य सभापति के आदेशों की लगातार अवहेलना कर रहे थे तब सभापति (डा॰ एस॰ राधाकृष्णन्) ने कहा: ''मुझे बहुत खेद है कि आप इस तरह का आचरण कर रहे हैं। आपका आचरण समूचे सदन का अपमान है।''[9]

> 18 फरवरी, 1963 को राज्य सभा के एक सदस्य ने केन्द्रीय कक्ष में राष्ट्रपति के अभिभाषण में व्यवधान डाला और उसके बाद बहिर्गमन किया। अगले दिन सभा के समवेत होने पर सभी पक्षों द्वारा इस पर खेद प्रकट किया गया। सभापति ने सदस्यों द्वारा व्यक्त किए गए इस विचार के साथ सहमति प्रकट की कि सदन के जिस सदस्य ने राष्ट्रपति के अभिभाषण में व्यवधान डाला उसका आचरण संसद्-सदस्य होने के नाते निंदनीय और अशोभनीय था। उन्होंने अन्य बातों के साथ यह भी कहा, ''कोई भी सदस्य जो सदन की मर्यादा और गरिमा के प्रतिकूल आचरण करता है, दंडनीय है।''[10]

> एक बार फिर जब एक सदस्य ने दूसरे सदस्य को जबरन सभा में नहीं बोलने दिया तब सभापति ने संबंधित सदस्य के अमर्यादित आचरण पर अपनी व्यथा व्यक्त की। सभापति ने कहा कि सदस्य का व्यवहार सदन की अवमानना है जिसकी सदन तुरंत भर्त्सना कर सकता था। उन्होंने यह भी कहा कि ऐसे व्यवहार से सदन की प्रतिष्ठा पर धब्बा लगता है और उसे सहन नहीं किया जा सकता। दोषी सदस्य द्वारा की गई क्षमा-याचना को देखते हुए उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गई।[11]

एक अन्य अवसर पर एक सदस्य ने सदन के दूसरे सदस्य के विरुद्ध कुछ अपमानजनक शब्द कहे जिन्हें उपसभापति ने सदन की कार्यवाही से निकाल दिया। सदस्य पर यह आरोप भी था कि उन्होंने सदन में दूसरे सदस्य को जूता दिखाया। सभापति ने उस सदस्य को, जिनके विरुद्ध यह शिकायत की गई थी, अपने कक्ष में बुलाया। सदस्य ने इस बात का खंडन किया कि उन्होंने जूता दिखाया था और उनके कथन को देखते हुए सभापति ने मामले को वहीं समाप्त कर दिया किंतु अन्य बातों के साथ निम्नलिखित टिप्पणी भी की:

''... इस तरह से अमर्यादित रूप से बोलना या व्यवहार करना किसी के लिए भी प्रशंसा की बात नहीं है। इस तरह के आचरण से समूचे सदन की बदनामी होती है। इस सदन के हर सदस्य से मेरा यह व्यक्तिगत रूप से अनुरोध है कि जनता ने जो काम हमारे जिम्मे सौंपा है उसे हम मर्यादित और व्यवस्थित रूप से पूरा करें।''[12]

26 अप्रैल, 1988 को बैठक के अंतिम भाग में बोफोर्स संबंधी संयुक्त संसदीय समिति के प्रतिवेदन की एक प्रति के सभा पटल पर रखे जाने के समय एक सदस्य ने नियम पुस्तक की प्रति फेंक दी और गुस्से के साथ सदन से बहिर्गमन किया। सभापति ने सदन को दिनभर के लिए स्थगित करने से पहले सदस्य के आचरण को ''अत्यंत घृणित'' बताया। अगले दिन सभापति ने इस घटना पर उपसभापति द्वारा दिए गए विवरण को पढ़कर सुनाने के बाद सदस्य के आचरण की निंदा की और यह कहा, ''यदि हम कड़े शब्दों का इस्तेमाल न भी करें तो भी यह कहना पड़ेगा कि यह कार्य घृणाजनक और खेदजनक है। चाहे कितनी भी उत्तेजना क्यों न हो, ऐसे अशोभनीय और मर्यादाहीन आचरण का औचित्य नहीं ठहराया जा सकता।'' सभापति ने चेतावनी दी कि ऐसे किसी भी कार्य को सहन नहीं किया जाएगा जिससे सदन की बदनामी होती हो।[13]

सदन से बाहर चले जाने का आदेश

सभापति किसी सदस्य को, जिसका व्यवहार उसकी राय में घोर अव्यवस्था उत्पन्न करने वाला हो, तत्काल सदन से जाने के लिए कह सकता है।[14] राज्य सभा में ऐसे कई अवसर आए हैं जब सदस्यों को घोर अव्यवस्थाजनक आचरण के लिए सदन से बाहर चले जाने का निदेश दिया गया है।

जब प्रश्न-काल के दौरान एक सदस्य सदन की कार्यवाही में व्यवधान पैदा करते रहे और उन्होंने कहा कि वह चुप नहीं रहेंगे और अपनी आवाज उठाते रहेंगे तब सभापति ने उनसे सदन से जाने के लिए कहा क्योंकि सभापति की राय में उनका आचरण घोर अव्यवस्थाजनक था। जब सदस्य इसके बाद भी व्यवधान पैदा करते रहे तब सभापति ने कहा कि उन्हें सदस्य का नाम लेना पड़ेगा। इस पर वह सदस्य बाहर चले गए।[15]

25 जुलाई, 1989 को प्रश्न-काल के दौरान एक सदस्य ने दूसरे सदस्य को अनुपूरक प्रश्न पूछने से जबरन रोका। इस पर सभापति ने कहा: ''किसी व्यक्ति को इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती कि वह किसी सदस्य के साथ हाथापाई करे।''[16] 27 जुलाई, 1989 को शून्य-काल के दौरान इस मामले को उठाया गया। कुछ सदस्य चाहते थे कि दोषी सदस्य को सदन से माफी मांगनी चाहिए। संबंधित सदस्य ने स्पष्ट किया कि चूंकि उन्होंने सभापति के कक्ष में इस घटना पर पहले ही खेद प्रकट कर दिया है इसलिए वह सदन में पुन: खेद प्रकट नहीं करेंगे। इस पर उपसभापति ने कहा कि यदि सदस्य माफी नहीं मांगते हैं तो उन्हें सदन में नहीं बैठना चाहिए। इसके बाद वह सदस्य सदन से चले गए।[17]

निलंबन

यदि सभापति आवश्यक समझे तो वह उस सदस्य का नाम ले सकता है जो सभापति के अधिकार की उपेक्षा करता है या जो बार-बार और जानबूझकर सदन के कार्य में बाधा डालकर सदन के नियमों का दुरुपयोग करता है।[18] यदि किसी सदस्य का सभापति द्वारा इस तरह नाम लिया जाए तो उस सदस्य को सदन की सेवा से ऐसी अवधि तक निलंबित करने के लिए, जो सत्र के शेष भाग से अधिक न हो, एक प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है और सदन द्वारा स्वीकृत किया जाता है। किंतु सदन किसी दूसरे प्रस्ताव द्वारा निलंबन को समाप्त कर सकता है।[19] समय-समय पर सदस्यों को निलंबित करने के उदाहरण

निम्नलिखित हैं:

श्री गोडे मुराहरि को 3 सितम्बर, 1962 को सत्र के शेष भाग के लिए निलंबित किया गया था। उन्हें सदन के मार्शल ने सदन से हटाया।[20]

10 सितम्बर, 1966 का दिन राज्य सभा के 57वें सत्र का अंतिम दिन था। उस दिन श्री भूपेश गुप्त और श्री गोडे मुराहरि को दिन के शेष भाग के लिए निलंबित किया गया। इस संबंध में सरकारी पक्ष के मुख्य सचेतक (श्री आर॰ एस॰ दुग्गड़) ने दो अलग-अलग प्रस्ताव रखे।[21]

सभा के नेता (श्री एम॰सी॰ छागला) द्वारा 25 जुलाई, 1966 को उपस्थित किए गए और सदन द्वारा स्वीकृत किए गए दो अलग-अलग प्रस्तावों द्वारा श्री राजनारायण और श्री गोडे मुराहरि को एक सप्ताह के लिए निलंबित किया गया। जब उन्होंने सदन से बाहर जाने से इनकार किया तब सदन के मार्शल ने उन्हें हटाया। अगले दिन सभापति ने और दलों के नेताओं ने इस घटना पर दु:ख प्रकट किया।[22]

सभा के नेता (श्री एम॰सी॰ छागला) ने 16 नवम्बर, 1966 को श्री बी॰एन॰ मंडल को 10 दिनों के लिए निलंबित करने का प्रस्ताव रखा। बाद में वह सदन से चले गए और सभा के नेता ने भी प्रस्ताव वापस ले लिया।[23]

सभा के नेता (श्री जयसुखलाल हाथी) ने 14 दिसम्बर, 1967 को श्री राजनारायण को सत्र के शेष भाग के लिए निलंबित करने का प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव स्वीकृत हुआ किंतु श्री राजनारायण सदन से बाहर नहीं गए। सदन मध्याह्न भोजन के अवकाश के लिए स्थगित हुआ। जब सदन पुन: समवेत हुआ तब श्री राजनारायण सदन में बैठे रहे। एक सदस्य ने प्रस्ताव रखा कि सभा दस मिनट तक के लिए स्थगित कर दी जाए। तद्नुसार सभा स्थगित कर दी गई। सभा के पुन: समवेत होने के बाद एक प्रस्ताव के उपस्थित और स्वीकृत किए जाने पर सदस्य का निलंबन समाप्त कर दिया गया।[24]

संसदीय कार्य मंत्री (श्री ओम मेहता) ने 12 अगस्त, 1971 को श्री राजनारायण को सत्र के शेष भाग के लिए निलंबित करने का प्रस्ताव उपस्थित किया और वह स्वीकृत हुआ। श्री राजनारायण द्वारा सदन से बाहर जाने से इनकार कर दिए जाने पर सदन के मार्शल ने उन्हें हटाया।[25]

संसदीय कार्य विभाग में राज्य मंत्री ने 24 जुलाई, 1974 को श्री राजनारायण को सत्र के शेष भाग के लिए निलंबित करने का प्रस्ताव उपस्थित किया और वह स्वीकृत हुआ। उन्होंने सदन से बाहर जाने से इनकार किया। सदन के मार्शल को बुलाया गया और सदस्य को हटाया गया। इसके पश्चात् सदन ने मामले पर चर्चा की और उसके अंत में संसदीय कार्य विभाग के मंत्री ने निम्नलिखित प्रस्ताव रखा जो स्वीकृत हुआ:

> ''श्री राजनारायण को दिन के शेष भाग के लिए सदन की सेवा से निलंबित किया जाए और सत्र के शेष भाग के लिए उनके निलंबन को, जैसाकि इससे पहले सदन ने संकल्प किया था, समाप्त किया जाए।''

अगले दिन श्री राजनारायण को इस घटना पर वक्तव्य देने की अनुमति दी गई।[26]

संसदीय कार्य मंत्रालय में राज्य मंत्री (श्री एम॰एम॰ जेकब) ने 29 जुलाई, 1987 को निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किया:

> ''माननीय सदस्य श्री पुट्टपागा राधाकृष्ण ने कागज के एक टुकड़े में लिखी अपमानजनक टिप्पणियों को प्रदर्शित करके इस सभा के नियमों का उल्लंघन किया है जो इस सभा की अवमानना है और सभा सर्वसम्मति से संकल्प करती है कि उन्हें सभा से एक सप्ताह के लिए निलंबित किया जाए।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। किंतु श्री राधाकृष्ण सदन में बैठे रहे। तत्पश्चात् सदन एक घंटे के लिए और उसके बाद दिन के शेष भाग के लिए स्थगित किया गया।[27]

आचार समिति के पांचवें प्रतिवेदन में अन्तर्विष्ट सिफारिश की स्वीकृति के परिणामस्वरूप डा॰ छत्रपाल सिंह लोधा को प्रश्न पूछने के लिए धनराशि लेते हुए टेप में पकड़े जाने के आधार पर सभा से निलंबित किया गया, जब तक कि समिति की अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की जाती।[27क]

निष्कासन

अत्यधिक अभद्र व्यवहार के मामले में सदन किसी सदस्य को सदन से निष्कासित कर सकता है। जैसाकि मे ने कहा है: ''निष्कासन का प्रयोजन उतना अनुशासनात्मक नहीं है जितना कि वह उपचारात्मक है, वह सदस्यों को दंडित करने के लिए उतना नहीं है जितना कि वह सदन को ऐसे सदस्यों से मुक्त कराने का है जो सदस्यता के अयोग्य हैं।''[28]

राज्य सभा के सदस्यों को निष्कासित किए जाने के तीन उदाहरण हैं:

श्री सुब्रह्मण्यम स्वामी को 15 नवम्बर, 1976 को उस समिति की रिपोर्ट के आधार पर निष्कासित किया गया जो उनके आचरण और क्रियाकलापों की जांच करने हेतु नियुक्त की गई थी। समिति के अनुसार उनका आचरण ''सदन और उसके सदस्यों की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचाने वाला था और उन प्रतिमानों के अनुरूप नहीं था जिनकी सदन अपने सदस्यों से आशा करता है।''[29]

डा॰ छत्रपाल सिंह लोधा को आचार समिति के सातवें प्रतिवेदन में अन्तर्विष्ट सिफारिश से सहमत होते हुए सभा द्वारा प्रस्ताव को स्वीकार किए जाने के परिणामस्वरूप उनका आचरण सभा की प्रतिष्ठा के लिए अपमानजनक होने तथा आचार संहिता के अनुरूप न होने के कारण 23 दिसम्बर, 2005 को निष्कासित किया गया।[29क]

डा॰ स्वामी साक्षीजी महाराज को उनके घोर दुराचरण जिससे सभा तथा इसके सदस्यों की प्रतिष्ठा गिरी तथा जिससे राज्य सभा सदस्यों के लिए आचार संहिता का उल्लंघन हुआ, के कारण आचार समिति के आठवें प्रतिवेदन में अन्तर्विष्ट सिफारिश से सहमत होते हुए सभा द्वारा प्रस्ताव को स्वीकार किए जाने के परिणामस्वरूप 21 मार्च, 2006 को निष्कासित किया गया।[29ख]

प्रथाएं और परंपराएं

जो सदस्य पहली बार निर्वाचित होता है उसे कतिपय ऐसी प्रथाओं और परंपराओं की जानकारी प्राप्त करनी होती है जो अच्छी तरह से स्थापित हो चुकी हैं। कुछ ऐसी प्रथाएं और परंपराएं (जिन्हें संपूर्ण नहीं माना जा सकता) नीचे उल्लिखित हैं:

सभा की किसी बैठक में उपस्थित होने के लिए आ रहे प्रत्येक सदस्य को राज्य सभा सचिवालय द्वारा उसे जारी किए गए पहचान-पत्र को अपने साथ लाना चाहिए ताकि संसद् भवन में तैनात सुरक्षा कर्मचारी उसे बिना किसी बाधा के प्रवेश करने दें क्योंकि सुरक्षा कर्मचारियों को कड़े आदेश जारी किए गए हैं कि वे अजनबियों को संसद् भवन में प्रवेश न करने दें। कर्मचारियों के लिए यह हमेशा आसान नहीं होता कि वे अधिसंख्य सदस्यों के नामों और शक्ल-सूरत से परिचित हों।[30]

शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के पूर्व सदस्य प्रथानुसार सभापति के पास जाकर उनसे भेंट करते हैं। इसकी व्यवस्था पटल या सूचना कार्यालय (नोटिस ऑफिस) द्वारा की जाती है जो सदस्यों को शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने की प्रक्रिया और उनके द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले पक्षों के बारे में भी सलाह देता है।[31] सदस्यों को पटल कार्यालय में निर्वाचन अधिकारी (रिटर्निंग ऑफिसर) द्वारा जारी किए गए उनके निर्वाचन के प्रमाण-पत्र को भी जमा करना पड़ता है और संविधान की दसवीं अनुसूची के अधीन विहित प्रपत्र में अपनी राजनैतिक संबद्धता के संबंध में सूचना देनी होती है। अन्य जानकारी के लिए या अपनी सदस्यता या संसदीय कार्य से संबंधित मामलों के बारे में सदस्य राज्य सभा सूचना कार्यालय से संपर्क कर सकते हैं।

सदन में प्रवेश करने के पूर्व प्रत्येक सदस्य को प्रतिदिन उपस्थिति रजिस्टर में अपनी उपस्थिति दर्ज करनी पड़ती है। यह रजिस्टर लॉबी में एक पीठिका पर रखा होता है।[32]

सदन की बैठकों के दौरान किसी सदस्य को ऐसी पर्ची या पर्चियां दी जा सकती हैं जिनमें उनसे मिलने के लिए आए हुए किसी व्यक्ति के बारे में सूचना होती है। ऐसी व्यवस्था की गई है जिसके द्वारा सदस्यगण स्वागत कार्यालय में ऐसे आगंतुकों से भेंट कर सकते हैं। यह कार्यालय संसद् भवन के पास ही है।[33]

किसी सदस्य को सदन के भीतर ऐसा कुछ नहीं कहना चाहिए या नहीं करना चाहिए जो सदन के प्रक्रिया नियमों, निर्णयों या पूर्वोदाहरणों या मान्य तथा स्थापित प्रथाओं, परम्पराओं और परिपाटियों के अनुरूप न हों।[34]

सदस्यों को विश्वास में लेकर जो सूचना दी जाती है या संसदीय समितियों के सदस्य होने के नाते सदस्यों को जो सूचना दी जाती है उसे उन्हें किसी के समक्ष प्रकट नहीं करना चाहिए और न उन्हें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसका उपयोग अपने व्यवसाय में करना चाहिए। उदाहरणार्थ समाचार-पत्रों के संपादकों या संवाददाताओं या व्यापारिक फर्मों के मालिकों आदि के रूप में उन्हें इस तरह से ऐसी सूचना का उपयोग नहीं करना चाहिए।[35]

किसी सदस्य को ऐसे प्रमाण-पत्र नहीं देने चाहिए जो तथ्यों पर आधारित न हों और न ही स्वयं को किसी व्यक्ति की शिकायतों के सुलभ समर्थक के रूप में इस्तेमाल होने देना चाहिए।[36]

सभा में किसी मामले को उठाने की सूचना को किसी सदस्य या अन्य व्यक्ति द्वारा तब तक प्रचारित नहीं किया जाना चाहिए जब तक उसे सभापति द्वारा गृहीत न कर लिया गया हो और सदस्यों में परिचालित न कर दिया गया हो।[37]

सभापीठ द्वारा दी गई व्यवस्थाएं सदन के पूर्वोदाहरणों के अनुसार दी जाती हैं और जहां कोई पूर्वोदाहरण न हों वहां सभापीठ द्वारा सामान्य संसदीय प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है,[38] सदन के भीतर या बाहर और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सभापीठ की आलोचना नहीं की जानी चाहिए।

> एक बार सभापति ने एक ध्यानाकर्षण की सूचना के लिए अनुमति नहीं दी। जब एक सदस्य ने सभापति के इस निर्णय के बारे में प्रश्न उठाया तब सभापति ने व्यवस्था दी: ...इस सदन में जो प्रथा प्रचलित है उसके अनुसार जो माननीय सदस्य सभापीठ की व्यवस्था या निर्णय के बारे में कुछ कहना चाहते हैं उन्हें सभापति से उनके कक्ष में मिलना चाहिए। सभापति की व्यवस्था और निर्णय पर सदन के भीतर विवाद नहीं किया जा सकता।[39]
>
> 25 फरवरी, 1970 को सभापीठ ने एक सदस्य द्वारा उच्चतम न्यायालय के विरुद्ध की गई टिप्पणियों को सदन की कार्यवाही से निकाल दिया। अगले दिन सदस्य ने इस मामले को सदन में उठाया। कुछ अन्य सदस्यों ने भी चर्चा में भाग लिया। इस पर उपसभापति द्वारा निम्नलिखित टिप्पणियां की गईं:
>
> > ...यह वस्तुत: दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस पर सदन में चर्चा हुई है। ...यदि कोई व्यक्ति पीठासीन अधिकारी द्वारा दी गई व्यवस्था से व्यथित होता है तो उसे इस सामान्य उपाय को उपयोग में लाना चाहिए कि वह इस संबंध में सभापति से मिले और तत्कालीन पीठासीन अधिकारी से परामर्श करते हुए सारे मामले पर सभापति से विचार-विमर्श करके उसका निपटारा कराए। यह वांछनीय नहीं है कि पीठासीन अधिकारियों द्वारा दी गई व्यवस्थाओं पर इस सदन में चर्चा हो। मुझे आशा है कि इसे किसी पूर्वोदाहरण के रूप में नहीं बल्कि एक अपवाद के रूप में माना जाएगा। मुझे आशा है कि भविष्य में ऐसी किसी व्यवस्था पर सदन में बहस और चर्चा नहीं होगी।[40]

सदन की कार्यवाही की मर्यादा और गंभीरता को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि सदन में ''धन्यवाद'', ''आपको धन्यवाद'', ''जय हिन्द'', ''वन्दे मातरम्'', या कोई और नारे न लगाए जाएं। सदन की कार्यवाही में किसी ''करतलध्वनि'' या ''हर्षध्वनि'' या ''हंसी'' को अभिलिखित नहीं किया जाता।[41]

राज्य सभा/लोक सभा सचिवालय, उनके कार्यकरण या राज्य सभा के सभापति/लोक सभा के अध्यक्ष के कार्यकरण से संबंधित मामलों को सदन में नहीं उठाया जाना चाहिए। उनसे संबंधित प्रश्न गृहीत नहीं किए जाते और न ही सदन में उनका उत्तर दिया जाता है। राज्य सभा/लोक सभा सचिवालय के बजट प्राक्कलन पर भी सदन में या उसकी समिति में चर्चा नहीं होती। वाद-विवाद में किसी सदन के अधिकारियों का हवाला देना या उनके बारे में कोई उल्लेख करना भी उचित नहीं है।[42]

जब एक बार किसी सदस्य ने कुछ प्रश्नों के गृहीत किए जाने के संबंध में सचिवालय के बारे में कुछ टिप्पणियां की तब कुछ सदस्यों ने आपत्ति की कि ये टिप्पणियां अपमानजनक है। उपसभापति का कहना था कि सदन में सचिवालय पर कोई आक्षेप नहीं किए जाने चाहिए।[43]

एक सदस्य ने विनियोग (संख्यांक 2) विधेयक, 1968 पर बोलते हुए सुझाव दिया कि राज्य सभा सचिवालय के अधिकारियों का हर तीन वर्ष बाद स्थानांतरण किया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि यदि वह एक स्थान पर तीन वर्ष से अधिक समय पर रहेंगे तो एक प्रकार का निहित स्वार्थ उत्पन्न होगा और उससे निष्पक्षता, वस्तुनिष्ठता और न्यायशीलता नहीं आ सकेगी। अगले दिन सभापति ने यह कहा:

''कल की कार्यवाही में उन टिप्पणियों को पढ़कर मुझे दु:ख हुआ है जो एक सदस्य ने राज्य सभा और लोक सभा सचिवालय के बारे में की हैं। यह एक सुस्थापित परम्परा है कि सामान्यत: सदन में किसी सदन के सचिवालय या उसके किसी अधिकारी के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया जाता। यदि किसी सदस्य को किसी अधिकारी के विरुद्ध या सचिवालय में की गई किसी चीज से कोई शिकायत है तो उसके लिए उचित उपाय यह है कि वह पीठासीन अधिकारी के कक्ष में जाकर उनसे मिले। सदस्यों को याद रखना चाहिए कि सचिवालय के अधिकारियों को बहुत कठिन और कभी-कभी नाजुक काम करना होता है क्योंकि उनका सभी दलों और समूहों के सदस्यों के साथ वास्ता पड़ता है और उनसे आशा की जाती है कि वे भय या पक्षपात से मुक्त होकर अपने कर्त्तव्यों का पालन करेंगे। यदि किसी भी मामले में किसी भी सदस्य को कोई शिकायत है तो उन्हें पीठासीन अधिकारी के कक्ष में उसका हल ढूंढ़ना चाहिए क्योंकि पीठासीन अधिकारी सचिवालय के सभी कार्यों के लिए जिम्मेदार है।''[44]

एक अन्य अवसर पर एक ध्यानाकर्षण सूचना के बारे में एक सदस्य ने कहा कि सचिवालय एक सुपर कैबिनेट बन गया है।[45] 19 अगस्त, 1968 को सभापति ने ध्यानाकर्षण सूचनाओं को गृहीत करने के संबंध में एक व्यवस्था दी और सचिवालय के बारे में किए गए उल्लेख के संबंध में निम्नलिखित टिप्पणी की:

...यह दुर्भाग्य की बात है कि इस संबंध में कुछ सदस्यों ने सचिवालय के बारे में टिप्पणियां की हैं ...सदस्यों को याद रखना चाहिए कि सचिवालय के अधिकारियों को बहुत कठिन और कभी-कभी नाजुक काम करना होता है क्योंकि उनका सभी दलों और समूहों के सदस्यों के साथ वास्ता पड़ता है और उनसे आशा की जाती है कि वे भय या पक्षपात से रहित होकर अपने कर्त्तव्यों का पालन करेंगे। यदि सदस्यगण सदन में यह कहना शुरू कर देंगे कि फलां काम के पीछे सचिवालय की नीयत ऐसी थी या वैसी थी या यदि वे सचिवालय पर आरोप लगाएंगे तो उससे सचिवालय के कुशल और स्वतंत्र कार्यकरण में सहायता नहीं मिलेगी।[46]

एक बार एक सदस्य एक मामला उठाना चाहते थे जो सचिवालय में अनुसरण की जा रही प्रक्रिया (संभवत: सूचनाओं को गृहीत करने की प्रक्रिया) के बारे में एक समाचार-पत्र में छपे एक लेख के संबंध में था। इस पर उपसभापति ने इस परम्परा की ओर ध्यान दिलाया कि राज्य सभा सचिवालय में अपनाई जा रही प्रक्रिया या उसके कार्यकलापों के बारे में सदन में कभी कोई चर्चा नहीं हुई है।[47]

एक सदस्य ने प्रशासनिक अधिकरण (संशोधन) विधेयक, 1986 पर हो रही चर्चा में भाग लेते हुए सभापति द्वारा सचिवालय में भारतीय प्रशासनिक सेवा के एक अधिकारी की नियुक्ति के बारे में टिप्पणी की।[48] सभापति ने इन अंशों को सदन की कार्यवाही से निकाल दिया और अगले दिन सभा का ध्यान इस सुस्थापित परम्परा की ओर दिलाया कि सचिवालय से संबंधित मामलों और सभापति के कार्यकरण से संबंधित मामलों के बारे में और सचिवालय के अधिकारियों के बारे में सदन के वाद-विवाद में उल्लेख करना उचित नहीं है। उन्होंने सदन से इस परम्परा का पालन करने का अनुरोध किया ताकि सदन निष्पक्षता के साथ और भय या पक्षपात से मुक्त होकर सचिवालय के अधिकारियों की सेवाओं को प्राप्त कर सके।[49]

30 अप्रैल, 1992 को अल्पसंख्यकों की शैक्षिक और तत्संबंधी समस्याओं से संबंधित विशेष उल्लेख के दौरान एक सदस्य ने लोक सभा सचिवालय के एक कर्मचारी के प्रति कथित अन्याय के एक मामले का उल्लेख किया। उस दिन सदस्य की टिप्पणी पर ध्यान नहीं गया। बाद में इस टिप्पणी की ओर ध्यान दिलाए जाने पर सभापति ने उसे सदन की कार्यवाही से निकालने का आदेश दिया और सदस्य को इसकी सूचना दी गई।[50]

सदन में पालनीय नियम

जब सभा की बैठक हो रही हो तब सदस्यों से संसदीय शिष्टाचार के कतिपय नियमों के पालन की आशा की जाती है। कुछ महत्त्वपूर्ण नियम निम्नलिखित हैं:

सदस्यों को बैठक के आरंभ होने के निर्धारित समय से, जो मध्याह्न पूर्व 11 बजे है, कुछ मिनट पहले उपस्थित होना चाहिए। मार्शल नियत समय पर सभापति के आगमन की घोषणा करता है और उसके तुरंत बाद सभापति सदन में प्रवेश करता है। सभापति के प्रवेश करते ही सदस्यों को किसी भी प्रकार की बातचीत बंद कर देनी चाहिए, उन्हें अपने-अपने स्थानों पर होना चाहिए और वहां खड़ा हो जाना चाहिए। जो सदस्य इस समय सदन में प्रवेश करते हैं उन्हें तब तक प्रवेश-मार्ग पर चुपचाप खड़े रहना चाहिए जब तक सभापति अपना स्थान ग्रहण नहीं करता और उसके बाद उन्हें अपना-अपना स्थान ग्रहण करना चाहिए।[51]

प्रत्येक सदस्य को शालीनता के साथ और इस प्रकार से सदन में प्रवेश करना चाहिए और वहां से बाहर आना चाहिए ताकि सदन की कार्यवाही में कोई व्यवधान उत्पन्न न हो। बैठक के दौरान यदि सदस्य के लिए बाहर जाना आवश्यक हो तो वह सदन में अपनी सीट के समीपवर्ती द्वार से बाहर निकल सकता है ताकि सदन के कार्य में कोई बाधा उत्पन्न न हो। सदस्यों को सदन में इस तरह से आपस में बातचीत नहीं करनी चाहिए जिससे सदन की कार्यवाही में व्यवधान उत्पन्न हो। यद्यपि दूर से ऐसी बातचीत बहुत अधिक सुनाई नहीं देती तथापि सदन में विशेष और आधुनिकतम ध्वनि व्यवस्था होने के कारण काफी व्यवधान उत्पन्न हो सकता है।[52] इसके अतिरिक्त, जब सदस्य लॉबी में हों तब उन्हें धीमे स्वर में एक दूसरे से बातचीत करनी चाहिए और जोर-जोर से नहीं हंसना चाहिए ताकि सदन की कार्यवाही में विघ्न पैदा न हो।[53]

एक ध्यानाकर्षण चर्चा के दौरान जब कुछ सदस्य आपस में बात कर रहे थे तब उपसभापति ने टिप्पणी की: ''आपस में बातचीत और कानाफूसी रिकॉर्ड में नहीं जाएगी... जब तक कि उसे कार्यवाही में शामिल करना आवश्यक न हो।''[54]

सभा में प्रवेश करते समय या सदन से जाते समय या अपना स्थान ग्रहण करते समय या उसे छोड़ते समय प्रत्येक सदस्य को चाहिए कि वह सभापीठ के प्रति नमन करें।[55] यह प्रणाम समस्त सदन के प्रति आदर का प्रतीक है, केवल सभापीठ के प्रति नहीं।

किसी सदस्य को सभापीठ और सदन में बोल रहे किसी सदस्य के बीच से होकर नहीं गुजरना चाहिए।[56]

9 अगस्त, 1952 को एक सदस्य ने अन्य बातों के साथ यह टिप्पणी की ''हर दिन मैं यह देख रहा हूं कि जब सार्जेन्ट (कर्मचारी) माननीय सदस्यों या सचिव के पास जाते हैं तो वे करीब-करीब रेंग रहे होते हैं।'' इस पर सभापति का कहना था: ''वे सभापीठ और वक्ता के बीच में नहीं आना चाहते।''[57]

किसी सदस्य को सभापीठ की ओर पीठ करके न तो बैठना चाहिए और न ही खड़े होना चाहिए।[58] ऐसा करना अनादर का सूचक माना जाता है और जब भी ऐसी बात सभापीठ के ध्यान में लाई जाती है तब संबंधित सदस्य को ऐसा करने से तुरंत रोका जाता है।

एक बार प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू अपनी सहयोगी श्रीमती लक्ष्मी मेनन से, जो अपनी सीट पर थीं, इस तरह से बात कर रहे थे कि सभापति को उनकी पीठ नजर आ गई। इस पर सभापति (डा॰ एस॰ राधाकृष्णन्) ने दृढ़ता के साथ कहा: ''प्रधान मंत्री महोदय, आप कर क्या रहे हैं?'' प्रधान मंत्री को अपनी भूल महसूस हुई उन्होंने अपनी सीट पर वापस जाकर क्षमा मांगी।[59]

एक बार सभापति ने श्री पीलू मोदी से (जो एक स्थूलकाय सदस्य थे), यह निवेदन किया कि वे सभापीठ की तरफ अपनी पीठ न करें। सदस्य ने परिहास का पुट देते हुए यह स्पष्ट किया कि उनकी कुछ शारीरिक असमर्थताएं हैं और उनमें से एक यह है कि उनकी आंखें उनके शरीर के एक ही ओर हैं।[60] एक अन्य अवसर पर जब एक सदस्य ने इस ओर ध्यान दिलाया कि श्री मोदी सभापति की तरफ अपनी पीठ करके खड़े हैं तब श्री मोदी ने फिर कहा: ''आप जानते हैं कि मैं गोलाकार हूं; मेरी न कोई पीठ है और न कोई पेट।''[61]

एक बार सभापति ने यह देखकर कि एक सदस्य की पीठ उनकी ओर है, सदस्य को संबोधित करते हुए यह टिप्पणी की: ''...आप बहुत खूबसूरत हैं, अपनी पीठ न दिखाएं।''[62]

किसी सदस्य को, उस स्थिति को छोड़कर जब सदन की कार्यवाही के संबंध में ऐसा करना आवश्यक हो, अपने स्थान (सीट) पर किसी समाचार-पत्र, पत्रिका, पुस्तक या पत्र को नहीं पढ़ना चाहिए।[63]

जब एक सदस्य ने सभापति का ध्यान इस ओर दिलाया कि एक सदस्य सदन में समाचार-पत्र पढ़ रहा है। तब सभापति ने कहा:

मैं समझता हूं कि सदन में अखबार पढ़ना सदन के प्रति–सभापीठ की बात तो छोड़िए–अत्यन्त अनुचित और अत्यन्त अशिष्ट व्यवहार है।

जब एक सदस्य ने तर्क दिया कि हो सकता है कि वह किसी खास विषय के बारे में हो तब सभापति ने फिर कहा: ''वे उसे पकड़ के इस तरह नहीं पढ़ सकते...वे उसका हवाला दे सकते हैं।''[64]

किसी सदस्य को किसी दूसरे सदस्य के भाषण करते समय अव्यवस्थित ढंग से टिप्पणी करके, सीत्कार करके, भाषण के साथ-साथ टीका-टिप्पणी करके, शोर करके या अन्य किसी अव्यवस्थित ढंग से बाधा या व्यवधान नहीं डालना चाहिए।[65] जब वह सदन में नहीं बोल रहा हो तब उसे शांत रहना चाहिए।[66]

जब कोई सदस्य बोलना चाहता है तब उसे सभापति का ध्यान आकर्षित करने के लिए अपने स्थान पर खड़ा होना चाहिए। जब तक कोई सदस्य सभापीठ की दृष्टि में नहीं आ जाता और जब तक सभापीठ उसका नाम लेकर या इशारे से उसे बोलने के लिए नहीं कहता तब तक उसे नहीं बोलना चाहिए।[67]

एक बार जब एक सदस्य सभा के नेता के भाषण के दौरान बार-बार व्यवधान डालने का प्रयास कर रहे थे तब उपसभापति ने कहा:

''मैंने देखा है कि यहां पर सभापीठ की दृष्टि में आए बिना ही बोलने की प्रवृत्ति है। नियमों के अधीन ऐसा नहीं होना चाहिए। जब तक कोई सदस्य सभापीठ की दृष्टि में नहीं आ जाता तब तक वह भाषण नहीं कर सकता। जब तक सभापीठ की नजर उस पर न पड़े तब तक किसी सदस्य को बीच में नहीं बोलना चाहिए, सदस्य को पहले सभापीठ की नजर में आना चाहिए और उसके बाद ही बोलना शुरू करना चाहिए।''[68]

जब कोई सदस्य बोल रहा हो तब दूसरे सदस्य को उसके साथ बहस नहीं करनी चाहिए। परंतु वह भाषण कर रहे सदस्य से जानकारी प्राप्त करने की दृष्टि से सभापीठ के माध्यम से प्रश्न पूछ सकता है। किंतु जो सदस्य सभापीठ की अनुमति से बोल रहा हो उसे किसी सदस्य द्वारा बार-बार नहीं टोका जाना चाहिए। यदि व्यवधान सभापीठ की अनुमति से कोई औचित्य प्रश्न उठाने के लिए नहीं हो तो भाषण कर रहे सदस्य को अधिकार है कि वह दूसरे सदस्य को बोलने की अनुमति न दे और अपने भाषण को जारी रखे।[69]

हर सदस्य को उसके लिए नियत की गई सीट से ही बोलना चाहिए। किसी सदस्य के अपनी सीट पर न बैठे होने पर यह हो सकता है कि उसे अनुपूरक प्रश्न पूछने या बोलने के लिए न बुलाया जाए।[70]

एक बार प्रश्न-काल के दौरान ऐसा देखा गया कि कई सदस्य उन सीटों से प्रश्न पूछ रहे हैं जो उनके लिए नियत नहीं की गई हैं। उपसभापति ने निवेदन किया कि प्रश्न-काल के दौरान प्रत्येक सदस्य को उसके लिए नियत सीट पर होना चाहिए।[71] एक अन्य अवसर पर किसी दूसरे सदस्य की सीट पर बैठे हुए एक सदस्य बार-बार व्यवधान डालने की कोशिश कर रहे थे तब उपसभापति ने सदस्य को याद दिलाया कि वह अपनी सीट पर नहीं हैं।[72]

किंतु यदि अपनी सीट से बोल रहे किसी सदस्य की आवाज वृत्तलेखकों (रिपोर्टरों) को न सुनाई दे तो सभापीठ उन्हें माइक्रोफोन के निकट वाली सीट से बोलने की अनुमति दे सकता है।

एक बार उपसभापति ने एक सदस्य से कहा कि वह माइक्रोफोन के निकट आकर बोलें, एक अन्य सदस्य ने औचित्य प्रश्न उठाया कि वह सदस्य की सीट नहीं है और संबंधित सदस्य ने अपनी सीट छोड़कर और माइक्रोफोन के निकट आकर सभा के प्रति अनादर दिखाया है। उपसभापति ने औचित्य प्रश्न को अस्वीकार करते हुए यह स्पष्ट किया कि उन्होंने सदस्य को दूसरी सीट से बोलने के लिए इसलिए अनुमति दी है क्योंकि वृत्तलेखक उनकी बात को उनकी सीट से नहीं सुन सके। उपसभापति का यह भी कहना था:

...कई बार ऐसा हुआ है कि सदस्यों को अपनी सीट से माइक्रोफोन के निकट आकर बोलने की अनुमति दी गई है ताकि वृत्तलेखक उनके भाषण को अच्छी तरह सुनकर उसे लिख सकें। यहां तक कि कोई सीट किसी सदस्य की सीट नहीं है, तो भी सभापति के विवेक के अधीन है कि वह उन्हें वहां से बोलने की अनुमति दे। कभी-कभी कुछ सदस्यों को बैठकर भी बोलने की अनुमति दी गई है।[73]

यदि किसी सदस्य ने सभापति को कोई सूचना (नोटिस) या पत्र भेजा है तो उसे उसकी विषय-वस्तु का सदन में तब तक उल्लेख नहीं करना चाहिए जब तक उसे सभापति ने ऐसा करने के लिए स्पष्ट रूप से अनुमति न दी हो। यदि सूचना या पत्र के बारे में सदस्य को कोई जानकारी नहीं मिली हो तो उसे यह मान लेना चाहिए कि मामला सभापति के विचाराधीन है या उन्होंने उसके लिए अनुमति नहीं दी है।[74]

सदस्यों को अपने भाषणों को समाप्त करने के तुरंत बाद सदन को छोड़कर नहीं जाना चाहिए। सदन के प्रति शिष्टता का व्यवहार हो इसके लिए आवश्यक है कि सदस्य अपने भाषणों को समाप्त करने के बाद अपने-अपने स्थान पर पुन: बैठ जाएं और यदि आवश्यक हो तो ऐसा करने के बाद ही सदन को छोड़ें।[75]

यदि कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य या मंत्री की आलोचना करता है तो जिस सदस्य या मंत्री की आलोचना की गई है उसे आलोचना करने वाले सदस्य से यह आशा करने का अधिकार है कि वह उसका उत्तर सुनने के लिए सदन में उपस्थित रहेगा।[76]

एक सदस्य द्वारा व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने के लिए मांगी गई अनुमति के बारे में अपनी व्यवस्था देते हुए सभापति ने अंत में निम्नलिखित टिप्पणी की:

मैं यह भी कहना चाहूंगा कि सामान्यत: जो सदस्य बहस में भाग लेते हैं और सरकार की आलोचना करते हैं उन्हें अपनी आलोचना के उत्तर को सुनने के लिए सभा में उपस्थित रहना चाहिए ताकि भविष्य में व्यक्तिगत स्पष्टीकरण के लिए वक्तव्य देने की स्थिति न आए।[77]

किसी सदस्य को सदन के भीतर से दीर्घा को संबोधित करके नहीं बोलना चाहिए और न ही उसे उसका कोई उल्लेख करना चाहिए या उससे कोई अपील करनी चाहिए। दीर्घा में बैठे हुए किसी व्यक्ति के लिए तालियां बजाना नियम-विरुद्ध है।[78] किंतु उन अवसरों पर जब सभापति विशेष प्रकोष्ठ में लब्ध-प्रतिष्ठ विदेशी अतिथियों की उपस्थिति का उल्लेख करते हैं तब सदस्यगण मेजें थपथपाकर उन अतिथियों का स्वागत तो करते ही हैं।

किसी विधेयक पर चर्चा के दौरान एक सदस्य ने औचित्य प्रश्न उठाया कि क्या सदन के किसी सदस्य को यह अधिकार है कि वह दर्शक दीर्घा में जाकर वहां से सदन की कार्यवाही देखे। सभा के दिनभर के लिए

स्थगित होने से पहले उपसभापति ने टिप्पणी की कि यद्यपि सदस्यगण विभिन्न दीर्घाओं में जाते हैं तथापि यह किसी सदस्य के लिए उचित नहीं है कि वह उस दीर्घा के कार्डधारक को बैठने के स्थान से वंचित करके या उसकी ओर से अपने लिए उस दीर्घा में कोई स्थान सुरक्षित रखे।[79]

यदि कोई मंत्री उन अभिलेखों के आधार पर कोई वक्तव्य देता है जो उसके पास हैं तो उसके वक्तव्य को तब तक सही माना जाना चाहिए जब तक उसे चुनौती देने के लिए जानबूझकर कोई प्रश्न न उठाया जाए।[80]

यदि कोई सदस्य दूसरे सदस्य पर कोई वक्तव्य देने का आरोप लगाता है और दूसरे सदस्य का यह कहना हो कि उसने ऐसा वक्तव्य नहीं दिया है तो उसके खंडन को बिना किसी आपत्ति के मान लिया जाना चाहिए।[81]

कोट को हाथ में लटकाकर सदन में प्रवेश करना अनुचित है और सदन की शालीनता के विरुद्ध है।[82]

सदस्यों को सदन के आने-जाने के रास्ते में खड़ा नहीं होना चाहिए। उन्हें या तो सीट पर बैठ जाना चाहिए या बाहर चले जाना चाहिए।[83]

सदस्यों को सदन के भीतर धूम्रपान करने का निषेध है। सिगरेट के जलते हुए टोटे फेंकने के लिए ऐश ट्रे और पात्रों की व्यवस्था की जाती है। सदस्यों को चाहिए कि वे सिगरेट के जलते हुए टोटे ऐश ट्रे और पात्रों के सिवाय जमीन पर कहीं न फेंकें ताकि आग लगने के खतरे से बचा जा सके।[84]

एक बार एक सदस्य ने एक राज्य सभा संसदीय समाचार का उल्लेख किया जिसमें सदस्यों को जमीन पर सिगरेट के टोटे फेंकने आदि के संबंध में हिदायतें दी गई थीं। सदस्य के विचार में उक्त संसदीय समाचार से सदस्यों के सम्मान को ठेस लगती थी। उन्होंने कहा कि जब सदन के भीतर धूम्रपान की अनुमति नहीं है तब ऐसी चीज को संसदीय समाचार में देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। सभापति का कहना था कि सिगरेट के टोटों पर समय बर्बाद नहीं किया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा, ''(समाचार में) इसका उल्लेख करने से पहले सिगरेट के टोटे अवश्य देखे गए होंगे। हमने मनुष्यों के शवों का उल्लेख नहीं किया, हमने जानवरों की लाशों का उल्लेख नहीं किया क्योंकि उन्हें नहीं पाया गया है।''[85]

दो सदस्यों को एक ही समय पर खड़ा नहीं रहना चाहिए।[86]

जब कोई सदस्य सदन में पहली बार भाषण कर रहा हो तब उसके भाषण के दौरान व्यवधान नहीं डाला जाना चाहिए।[87]

जहां तक संभव हो, सदस्यों को सदन में सभापीठ के निकट आकर बात नहीं करनी चाहिए। यदि आवश्यक हो, तो सदस्य सभापीठ को पर्चियां भेज सकते हैं।[88]

एक बार एक ध्यानाकर्षण पर चर्चा के दौरान एक सदस्य कोई बात कहने के लिए सभापति के निकट गए। इस पर सभापति ने कहा:

''मैं माननीय सदस्यों से यह निवेदन करना चाहूंगा कि वाद-विवाद के दौरान वे मेरे पास न आएं। मुझे इसके लिए खेद है। मेरा ध्यान बिल्कुल दूसरी तरफ चला गया है... और इससे सदन को असुविधा होती है।''[89]

कुछ दिन बाद जब एक सदस्य सभापति से बात करने के लिए उनके निकट आए तब सभापति ने पुन: ऐसी टिप्पणी की।[90]

जब तक सभापति से लिखित रूप में अग्रिम अनुमति न ली गई हो तब तक सदस्यों को संसद् भवन की प्रसीमा के भीतर कोई साहित्य, प्रश्नावलि, पुस्तिका आदि वितरित नहीं करनी चाहिए।[91]

13 सितम्बर, 1963 को मध्याह्न-भोजन के अवकाश के तुरन्त बाद सभा के पुन: समवेत होने पर उपसभापति द्वारा निम्नलिखित टिप्पणियां की गईं:

> मेरा ध्यान इस तथ्य की ओर दिलाया गया है कि आज दोपहर के बाद प्रत्येक सीट पर एक पर्चा रखा गया था। मैं समझती हूं कि प्रत्येक माननीय सदस्य इस सदन की इस सुस्थापित परंपरा को जानता है कि सभापति की पूर्व अनुमति के बिना इस सदन में कोई चीज़ वितरित नहीं की जानी चाहिए, चाहे वह पुस्तिका हो, प्रश्नावलि हो या अन्य किसी प्रकार का पत्र हो। मुझे आशा है कि प्रत्येक सदस्य द्वारा इस सुस्थापित परंपरा का अनुसरण किया जाएगा और जिस किसी ने भी ऐसा किया है उन्हें अहसास होगा कि भविष्य में ऐसा कभी नहीं करेंगे।[92]

जब तक सभापति द्वारा अस्वस्थता के आधार पर अनुमति नहीं दी गई हो तब तक किसी सदस्य को छड़ी लेकर सदन के भीतर नहीं आना चाहिए।[93]

संसद् भवन के परिसर के किसी भाग में सदस्यों को हथियार लेकर नहीं आना चाहिए और न ही उन्हें प्रदर्शित करना चाहिए। सदस्यों को सदन में बिल्ले (बैज) या प्रदर्शन की किसी वस्तु को पहनकर नहीं आना चाहिए और न ही उन्हें प्रदर्शित करना चाहिए।[94] सदन में बिल्ले पहनकर आने और किन्हीं वस्तुओं का प्रदर्शन करने के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

> एक बार कुछ सदस्य श्रीलंका में तमिल लोगों पर हो रहे हमलों के विरोध में अपने बाजुओं पर काली पट्टियां लगाकर सदन में आए। जब उनमें से एक सदस्य इस विषय की ओर ध्यानाकर्षण कर रहे थे तब उनसे कहा गया कि वह बिल्ले को उतार दें।[95]

> एक सदस्य ने, जो बिल्ला लगाए हुए थे, कहा कि आंध्र प्रदेश में लोकतंत्र की हत्या हो रही है। सभापति ने उनसे कहा कि वह बिल्ला हटा दें। उन्होंने यह भी कहा: ''मैं बिल्ला लगाए हुए किसी भी सदस्य से यह कहूंगा कि वह सदन के बाहर चले जाएं और साथ ही मैं उन्हें दिन-भर के लिए निलंबित कर दूंगा। ...किसी बिल्ले, बाजूबंद-पट्टी आदि की अनुमति नहीं दी जाएगी। आखिरकार हम सदन के भीतर हैं।''[96]

> 6 मई, 1985 को कुछ सदस्य कांग्रेस शताब्दी समारोह का बिल्ला लगाकर सदन में आए। औचित्य प्रश्न उठाए जाने पर उपसभापति ने इन सदस्यों से कहा कि वे बिल्ले उतार दें। इसके बाद कुछ दलीलें दी जाने लगीं। सभापति, जो अपने कक्ष में थे, सदन में वापस आए और उन्होंने यह निर्णय दिया कि यद्यपि ऐसा कोई नियम नहीं है जो सदस्यों द्वारा बिल्ले लगाने का निषेध करता हो तथापि ऐसा करना सदन की परंपरा के विरुद्ध है। इसके बाद संबंधित सदस्यों ने बिल्ले उतार दिए।[97]

> एक बार जब सदन मेहम (हरियाणा) कांड पर चर्चा करने वाला था तब एक सदस्य गोलियों का हार पहनकर सदन में आए। उपसभापति ने उनसे कहा कि वह उसे उतार दें क्योंकि ऐसा करना सदन की परंपरा के विरुद्ध है। शोर-शराबे और हंगामे के बीच सदन दिन-भर के लिए स्थगित कर दिया गया।[98]

> एक सदस्य ने सदन में जूस की बोतल दिखाने की कोशिश की जिसमें कोई बाहरी चीज़ पड़ी हुई थी। सभापति ने यह व्यवस्था देते हुए इसकी अनुमति नहीं दी कि ऐसा करना अनुचित है और यदि सदस्य ऐसा करते रहेंगे तो उनके विरुद्ध कार्यवाही की जाएगी।[99]

परंतु ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब सदस्यों ने अपने कथन की पुष्टि में कोई वस्तु पेश की थी या दिखाई थी। उदाहरण के लिए प्याज का हार,[100] इन्सेट 1ए का मॉडल,[101] छोटे सिक्के,[102] एक तीर,[103] खून से सने कपड़े,[104] दवा की बोतलें,[105] इडली में पाया गया (लकड़ी का) टुकड़ा[106] आदि।

> खाद्य और नागरिक पूर्ति मंत्री ने एक समाचारपत्र में प्रकाशित विज्ञापन दिखाया जिसमें एक आदमी को कड़वा मुंह बनाकर चाय पीते हुए दिखाया गया था। इसे दिखाकर मंत्री अपने इस कथन की पुष्टि कर रहे थे कि चीनी मिलों के मालिक आयातित चीनी के विरोध में प्रचार कर रहे हैं। उस दिन इस विषय पर एक ध्यानाकर्षण पर चर्चा होनी थी।[107]

> मॉस्को खेलों में भाग लेने वाली भारतीय टीम के सदस्यों को घटिया किस्म के जूतों की सप्लाई के बारे में

विशेष उल्लेख करते हुए एक सदस्य ने इन जूतों का एक नमूना पेश किया।[108] अगले दिन सभापति के निदेश पर सदस्य ने क्षमा मांगी। सभापति ने कहा: ''...सदन में किसी वस्तु को पेश करना सभी परंपराओं और नियमों के विरुद्ध है। उसे पेश किया गया था। आपने खेद प्रकट किया है। सभा को खुशी है।''[109]

प्रश्न-काल के समाप्त होते ही एक सदस्य ने कुछ छायाचित्र दिखाए जिनमें राजनैतिक नेताओं को एक कथित तस्कर के साथ दिखाया गया था। इस पर उपसभापति को कहना पड़ा: ''यह कोई चित्रशाला नहीं है, यहां पर छायाचित्रों को न लाएं।''[110]

किसी सदस्य को संसद् भवन की प्रसीमा या भू-क्षेत्र के भीतर धरना नहीं देना चाहिए, भूख-हड़ताल, प्रदर्शन आदि नहीं करने चाहिएं और कोई धार्मिक अनुष्ठान करने के प्रयोजन से उसका उपयोग नहीं करना चाहिए।[111]

जब एक सदस्य सदन की लॉबी में भूख-हड़ताल कर रहे थे तब उन्हें सभापति के आदेश पर संसद् भवन से हटा दिया गया। अगले दिन सभापति ने इस संबंध में निम्नलिखित टिप्पणी की:

> मैं यह पूर्ण रूप से स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि संसद् रात में सदस्यों के रहने के लिए या उनके द्वारा प्रदर्शन, भूख-हड़ताल या इस प्रकार कोई अन्य कार्य करने के लिए नहीं है। लोक सभा के एक सदस्य और राज्य सभा के एक सदस्य संसद् की प्रसीमा या संसद् के भू-क्षेत्र से नहीं जाना चाहते थे क्योंकि उन्होंने यह कहा कि वे यहां रात-भर रहना चाहते हैं और कोई राजनैतिक प्रदर्शन या भूख-हड़ताल करना चाहते हैं। जब उन्होंने जाने से इन्कार किया तब मेरे आदेश से उन्हें हटाया गया। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि संसद् के इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ कि किसी को यहां रात में रहने की अनुमति दी गई हो। यह संसद्, संसद् की प्रसीमा और संसद् का भू-क्षेत्र संसदीय कार्यों के लिए है और जब तक संसद् का कार्य चल रहा हो सदस्यों को तब तक यहां रहने का अधिकार है। उसके बाद उन्हें यहां ठहरने का कोई अधिकार नहीं है।

जब एक सदस्य ने कहा कि हड़ताली सदस्य और मंत्री में यह समझौता हुआ था कि सदस्य संसद् भवन की इमारत के बरामदे में बैठ सकते हैं तब सभापति ने कहा कि उन्हें इसकी कोई जानकारी नहीं है। उनका कहना था कि सरकार के अनुरोध पर भी ऐसा कोई समझौता नहीं हो सकता।

सभापति के उपरोक्त कथन पर एक सदस्य ने कहा कि संसद् छोड़ने का कोई निर्धारित समय नहीं है। इस पर सभापति ने कहा: ''बैठक के समाप्त हो जाने के बाद इसके लिए एक निश्चित समय है, उपयुक्त समय है।'' उन्होंने यह भी स्पष्ट किया: ''इसका निर्णय करना मेरा काम है कि उपयुक्त समय क्या है।''[112]

सदस्यों को वाद-विवाद की शालीनता और गरिमा बनाए रखनी चाहिए और कोई तुच्छ या ओछी बात नहीं करनी चाहिए।

बजट पर चर्चा के दौरान एक मंत्री और सदस्य के बीच नोंक-झोंक हुई। इस पर सभापति का कहना था:

> हमारी चर्चाएं शालीनता, गरिमा और यहां तक कि अपने विरोधियों के प्रति उदारता के साथ होनी चाहिए और यदि मुझे यह दिखाई देता है कि इन गुणों का अभाव है तो मुझे सदन के लिए और स्वयं अपने लिए भी खेद है।[113]

एक दूसरे अवसर पर 17 मार्च, 1961 को ''आयु में 15 वर्ष से अधिक का अंतर होने पर विवाह का निषेध'' संबंधी संकल्प पर हुई चर्चा के दौरान दिए गए कुछ भाषणों के लहजे के बारे में सभापति ने निम्नलिखित उद्गार प्रकट किए:

> मैंने सदन की कल की कार्यवाही पढ़ी और मैंने देखा कि सदन में कई सदस्यों ने जो भाषण दिए उनमें गंभीरता नहीं थी जिससे मुझे बहुत दु:ख हुआ। इस प्रकार के भाषणों से वक्ताओं की या सदन की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती।[114]

27 सितम्बर, 1955 को हुई सदन की कार्यवाही के कुछ अंशों को निकालने का आदेश देते हुए सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> ...हम इस सदन की प्रतिष्ठा और गरिमा को बनाए रखना चाहते हैं। हममें से प्रत्येक व्यक्ति इसमें उतनी ही रुचि रखता है जितनी मैं रखता हूं। मैं नहीं चाहता कि कोई यह कहे कि कभी-कभी इन चर्चाओं से ऐसा लगता है कि हम गंभीर और जिम्मेदार संसद्-सदस्यों की तरह नहीं बल्कि व्यावसायिक आंदोलनकारियों

की तरह आचरण कर रहे हैं। इस सदन के सभी सदस्यों को, चाहे वे किसी भी पक्ष के क्यों न हों, इस धारणा को नहीं उत्पन्न होने देना चाहिए। हमें सावधान रहना होगा और अपनी प्रतिष्ठा और अपनी गरिमा को बनाए रखना होगा। मैं इसी के बारे में चिन्तित हूं।[115]

बोलते समय कतिपय नियमों का पालन

जब कोई सदस्य बोलने के लिए खड़ा होता है तब सभापति द्वारा उसका नाम पुकारा जाता है। यदि कई सदस्य एक साथ उठ खड़े हों तो उस सदस्य को बोलने का अधिकार होता है जिसका नाम पुकारा गया हो।[116]

जो सदस्य किसी चर्चा या वाद-विवाद में बोलना चाहें वे निम्नलिखित रीतियों में से किसी एक के द्वारा सभापति को अपने इरादे की सूचना दे सकते हैं:

(क) संसदीय दल/समूह द्वारा सभापति को सदस्यों के नाम दिए जा सकते हैं;

(ख) कोई सदस्य सभापति को सीधे ही यह लिख सकता है कि वह किसी चर्चा में बोलना चाहता है;

(ग) कोई सदस्य अपने स्थान पर खड़े होकर सभापति की दृष्टि में आने की सुविदित संसदीय प्रथा का अनुसरण कर सकता है।

सदन में किसी वाद-विवाद में भाग लेने के इच्छुक सदस्यों की सूची या इस संबंध में किसी सदस्य द्वारा व्यक्तिगत रूप में भेजी गई पर्ची पटल को भेजी जानी चाहिए, न कि सभापीठ को।

चाहे किसी सदस्य ने अपने दल/समूह के द्वारा या सीधे ही सभापति को लिखकर अपना नाम भेजा हो, उसे सभापति द्वारा बोलने के लिए तब तक नहीं बुलाया जाएगा जब तक वह अपने स्थान पर नहीं खड़ा होता और सभापति की दृष्टि में नहीं आ जाता।

सभापति उन सूचियों को या उस क्रम को अपनाने के लिए बाध्य नहीं है जिनके अनुसार दलों/समूहों द्वारा या सदस्यों द्वारा व्यक्तिगत रूप से नाम दिए जाते हैं। सूचियां केवल सभापति के पथ-प्रदर्शन के लिए होती हैं और जब भी सभापति आवश्यक समझे, उसे उनमें परिवर्तन करने का सदैव अधिकार होता है।[117]

सदस्यों को अपने-अपने स्थानों से बोलना चाहिए और खड़े होकर बोलना चाहिए। परंतु यदि कोई सदस्य बीमार हो या शारीरिक रूप से असमर्थ हो तो उसे बैठकर बोलने की अनुमति दी जा सकती है।[118]

गृह मंत्री (श्री गोविन्द बल्लभ पंत) द्वारा संविधान (चौथा संशोधन) विधेयक, 1954 को एक संयुक्त समिति को सौंपने वाले प्रस्ताव को उपस्थित किए जाने के पूर्व सभापति ने उन्हें सुझाव दिया कि यदि उन्हें बैठकर बोलने में अधिक सुविधा होती है तो वे सदन की अनुमति से ऐसा कर सकते हैं। उन्होंने ऐसा ही किया और बैठकर बोलने की अनुमति देने के लिए सभापति तथा सदस्यों को धन्यवाद दिया।[119]

परंतु जब प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू जो अस्वस्थ थे और राज्य सभा में प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे, एक सदस्य ने सभापति के माध्यम से निवेदन किया कि प्रधान मंत्री बैठकर उत्तर दें और उन्हें हर बार खड़े होने की जरूरत नहीं है तब प्रधान मंत्री ने कहा: ''श्रीमन्, मैं सदन की गरिमा को बनाए रखना चाहता हूं।''[120]

सदस्य अपने भाषणों में किसी ऐसे मामले का उल्लेख नहीं कर सकते जिस पर न्यायिक निर्णय लंबित हो अर्थात् जो न्यायालय में विचाराधीन हो।[121] जब कोई सदस्य अपने भाषण के दौरान ऐसा करता है तब सभापीठ उसे ऐसा न करने के लिए कहता है और वह उससे यह भी कह सकता है कि वह अपने भाषण को जारी न रखे।

सदस्यों को दूसरे सदस्यों के विरुद्ध व्यक्तिगत आरोप लगाने की अनुमति नहीं है।[122]

एक सदस्य ने विनियोग विधेयक पर चर्चा के दौरान प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के विरुद्ध कतिपय व्यक्तिगत आरोप लगाए ।[123] सभापति ने नियम 238(2) का उल्लेख करते हुए कहा कि हाल में उन्होंने कुछ सदस्यों की यह प्रवृत्ति देखी है कि वे इस महत्त्वपूर्ण नियम की अनदेखी कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि ऐसी प्रवृत्ति से सदन की गरिमा को ठेस पहुंचती है और निश्चय ही उससे सदन के सदस्यों की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती। उन्होंने यह भी सूचित किया कि प्रधान मंत्री ने उन्हें लिखे एक पत्र में इन आरोपों का खंडन करते हुए कहा कि वे नितांत निराधार हैं। अत: उन्होंने सदस्य से अपने आरोपों को वापस लेने के लिए कहा। जब सदस्य इसके लिए सहमत नहीं हुए तब सभा के नेता (श्री एम॰ सी॰ छागला) ने इस मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंपने के लिए एक प्रस्ताव की सूचना पढ़कर सुनाई। इस प्रस्ताव पर सदन में चर्चा हुई।[124] अगले दिन एक सदस्य के सुझाव पर मामले का निपटारा सभापति पर छोड़ दिया गया और प्रस्ताव वापस ले लिया गया।[125] 7 सितम्बर, 1966 को आरोप लगाने वाले सदस्य की बात सुनने के बाद और प्रधान मंत्री द्वारा आरोपों का पुन: खंडन करने के बाद सभापति ने सदस्य से अपने कथन को वापस लेने के लिए कहा। सदस्य ने ऐसा ही किया और मामले को समाप्त कर दिया गया।[126]

किसी सदस्य से यह आशा नहीं की जाती कि वह सदनों या किसी राज्य विधान-मंडल के आचरण या कार्यवाही के बारे में आपत्तिजनक शब्दों का प्रयोग करे।[127] सभापीठ के निर्णय से पुन: यह पुष्ट होता है कि सदस्यों को लोक सभा में वाद-विवादों के बारे में कोई आलोचनात्मक उल्लेख नहीं करना चाहिए।

एक सदस्य ने अंतर्राष्ट्रीय स्थिति संबंधी एक प्रस्ताव पर बोलते हुए लोक सभा में इस विषय पर हुए वाद-विवाद का उल्लेख करते हुए उसकी आलोचना की। प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने यह सुझाव दिया कि राज्य सभा में लोक सभा में हुए वाद-विवाद का उल्लेख करने की प्रथा नहीं बननी चाहिए और चाहे तकनीकी दृष्टि से इसका औचित्य ठहराया भी जा सकता हो तब भी यह बुरी प्रथा होगी कि राज्य सभा लोक सभा पर बहस करे और लोक सभा राज्य सभा पर बहस करे और इससे दोनों सदनों के बीच अशांति पैदा होगी। सभापति ने सदस्य से लोक सभा का उल्लेख न करने को कहा और यह भी कहा कि सदस्य ने लोक सभा के बारे में जो कुछ कहा है उसे कार्यवाही से निकाल दिया जाएगा।[128]

एक सदस्य ने उत्तर प्रदेश विधान सभा के कार्यकरण के तरीके के बारे में कुछ टिप्पणियां कीं। इस पर आपत्ति किए जाने पर सभापति ने कहा कि वे यह नहीं चाहते कि सदन में उत्तर प्रदेश विधान सभा की कार्यवाही पर चर्चा हो। उत्तर प्रदेश विधान सभा से संबंधित टिप्पणियों को कार्यवाही से निकाल दिया गया।[129]

गृह मंत्री (ज्ञानी जैल सिंह) ने नौ राज्यों की विधान सभाओं को भंग कर दिए जाने के संबंध में हुई बहस का उत्तर देते हुए लोक सभा की सदस्यता से श्रीमती इंदिरा गांधी को निष्कासित करने और उन्हें जेल भेजे जाने का उल्लेख किया। औचित्य का प्रश्न उठाया गया कि इस उल्लेख से दूसरे सदन पर आक्षेप होता है और ऐसा करने की अनुमति नहीं है। सभापति ने स्पष्ट किया कि मंत्री एक ऐसे दल की आलोचना कर रहे थे, जो एक विशिष्ट सदन के माध्यम से कार्य कर रहा था और वे सदन की आलोचना नहीं कर रहे हैं। किंतु सभापति ने मंत्री से निवेदन किया कि वे जो कुछ भी कहना चाहते हैं वह दूसरे सदन पर आक्षेप किए बिना भी कहा जा सकता है।[130]

सदस्यों से यह भी आशा की जाती है कि वे राज्य सभा के किसी निश्चय पर, उसे रद्द करने के प्रस्ताव के अतिरिक्त, आक्षेप नहीं करेंगे।[131]

सदस्यों को उच्च प्राधिकार वाले व्यक्तियों के आचरण पर तब तक आक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक चर्चा संविधान के अधीन उचित शब्दों में रखे गए मूल प्रस्ताव पर आधारित न हो।[132]

जब संघ लोक सेवा आयोग के कतिपय प्रतिवेदनों को चर्चा के लिए लिया जा रहा था तब उपसभापति ने उसके दायरे को स्पष्ट करते हुए कहा: ''अनुच्छेद 317 और 318 के अधीन सरकार और आयोग की शक्तियों को निर्धारित किया गया है। यदि सरकार आयोग की सिफारिशों को अमल में नहीं लाती या उन्हें

स्वीकार कर लेती है तो सरकार की इस कार्यवाही की आलोचना की जा सकती है किंतु आयोग की सिफारिशों और उसके या उसके किन्हीं सदस्यों के कार्यों की आलोचना करना प्रासंगिक नहीं होगा।'' इस संदर्भ में उन्होंने तत्कालीन नियम 200(5) को, (जो वर्तमान नियम 238(5) के अनुरूप था) उद्धृत किया।[133]

जब नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (सेवा की शर्तें) विधेयक, 1953 पर विचार हो रहा था तब एक सदस्य ने कहा कि यद्यपि तत्कालीन नियंत्रक-महालेखापरीक्षक ने अपनी कुछ जिम्मेदारियों को बहुत अच्छी तरह से निभाया था तथापि वे अपनी आजादी के बावजूद कई चीजों पर नियंत्रण रखने में विफल रहे। इस पर उपसभापति ने टिप्पणी की:

> मैं नियंत्रक-महालेखापरीक्षक पर आक्षेप करने की अनुमति नहीं दूंगा... वे उच्चाधिकार वाले व्यक्ति हैं जिन्हें संविधान के अधीन हटाया जा सकता है। यदि वे अपने कर्त्तव्य में विफल रहे हैं तो उन्हें हटाने के कुछ तरीके हैं... नियम 200 (5) के अनुसार कोई सदस्य बोलते समय उच्च प्राधिकार वाले व्यक्तियों के आचरण पर तब तक आक्षेप नहीं करेगा जब तक कि चर्चा उचित शब्दों में रखे गए मूल प्रस्ताव पर आधारित न हो। यह महालेखापरीक्षक की आलोचना करने या उन्हें पद से हटाने का कोई मूल प्रस्ताव नहीं है।[134]

19 जुलाई, 1989 को सभा पटल पर रखे गए भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के रक्षा सेवाओं संबंधी प्रतिवेदन (पैरा 11 और 12) पर चर्चा के दौरान कुछ सदस्यों ने 21 और 25 जुलाई, 1989 को नियंत्रक-महालेखापरीक्षक की आलोचना करते हुए कुछ ऐसी टिप्पणियां की थीं जिनसे नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के पद की प्रतिष्ठा और साथ ही व्यक्तिगत रूप से उनकी प्रतिष्ठा को भी ठेस पहुंचती थी। राज्य सभा के एक भूतपूर्व सदस्य ने इस संबंध में सभापति को एक अभ्यावेदन दिया जिसे देखते हुए सभापति ने कार्यवाही के आपत्तिजनक अंशों को निकाले जाने का आदेश दिया जोकि सूचना कार्यालय[135] में रखी गई सूची में दर्शाए गए हैं। यह आदेश देते हुए सभापति ने फाइल पर निम्नलिखित टिप्पणी की:

> मुझे यह कहना पड़ रहा है कि चर्चा के दौरान जिस तरह से और जितनी बार आपत्तिजनक टिप्पणियां की गई हैं, उनसे मुझे बहुत दु:ख हुआ है। इन टिप्पणियों से सदन और भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक की गरिमा को आघात पहुंचा है। संवैधानिक मर्यादा और संसदीय शिष्टाचार को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि इन सभी अपमानजनक टिप्पणियों को सदन की कार्यवाही के अभिलेख से तुरंत निकाल दिया जाए।[136]

सदस्यों द्वारा वाद-विवाद पर प्रभाव डालने के प्रयोजन से राष्ट्रपति के नाम का उपयोग नहीं किया जा सकता।[137] सभा में राष्ट्रपति के आचरण पर भी चर्चा नहीं की जानी चाहिए।

वित्त विधेयक, 1970 पर चर्चा के दौरान श्री राजनारायण ने राष्ट्रपति का नाम लिया। उपसभाध्यक्ष ने कहा कि राष्ट्रपति के आचरण पर चर्चा नहीं की जायेगी। इस पर एक सदस्य ने राष्ट्रपति के पद और उनके व्यक्तित्व के बीच यह कहते हुए अन्तर करने का प्रयास किया कि किसी को भी उनकी व्यक्तिगत हैसियत के रूप में व्यक्ति की आलोचना करने की स्वतंत्रता है। इसको अस्वीकार करते हुए उपसभाध्यक्ष ने व्यवस्था दी:

> अत: न तो राष्ट्रपति के नाम से न उनके राष्ट्रपति रहते हमें श्री गिरि के आचरण पर चर्चा नहीं करनी चाहिए। इसलिए मेरी व्यवस्था है कि इस प्रकार की चर्चा की अनुमति नहीं दी जा सकती ।[138]

7 जून, 1971 को श्री ए॰जी॰ कुलकर्णी ने एक अनुपूरक प्रश्न पूछते समय राष्ट्रपति के नाम का उल्लेख किया। सभापति ने टिप्पणी की:

> राष्ट्रपति का नाम नहीं लिया जाना चाहिए था।[139]

बोलते समय सदस्यों को संसदीय भाषा का प्रयोग करना चाहिए। उन्हें देशद्रोहात्मक, राजद्रोहात्मक या मानहानिकारक शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।[140]

अंतर्राष्ट्रीय स्थिति पर चर्चा के दौरान एक सदस्य ने पाकिस्तान के राष्ट्रपति के बारे में कुछ टिप्पणियां कीं। प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने इस पर आपत्ति करते हुए कहा कि सदस्य ने जिस भाषा में एक विदेशी राज्य के अध्यक्ष के बारे में सदन में टिप्पणी की है वह उचित नहीं है... कुछ मर्यादाओं का पालन करना ही होगा। उपसभाध्यक्ष का कहना था:

> ऐसे कतिपय प्रक्रिया संबंधी नियम हैं जिनके अनुसार हम ऐसे शब्दों में किसी पड़ोसी राज्य के अध्यक्ष का उल्लेख नहीं कर सकते... मुझे आशा है कि माननीय सदस्य सावधानी बरतेंगे और ऐसी अपमानजनक शब्दावली का उपयोग नहीं करेंगे।

आपत्तिजनक शब्दों को सदन की कार्यवाही के अभिलेख से निकाल दिया गया।[141]

एक बार जब एक सदस्य द्वारा बांग्लादेश में छापामारों को दी जा रही मदद और कब्जे में ले लिए गए साज-सामान के बारे में प्रश्न पूछा जा रहा था तब विदेश मंत्री ने कहा कि सदस्य ने जो कुछ कहा है उसका अंतर्राष्ट्रीय मंचों में भारत के विरुद्ध इस्तेमाल किया जा सकता है। उन्होंने सदस्य से आग्रह किया कि वे इस तरह के मुद्दे न उठाएं। इस संबंध में उपसभापति का कहना था:

> जब हम इस सभा में अपने कर्त्तव्यों का पालन कर रहे हैं तब सदस्यों को संयत भाषा का प्रयोग करना चाहिए। सबसे बड़ी बात जो हर सदस्य को ध्यान में रखनी है यह है कि हमें ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जिससे हमारे राष्ट्रीय हितों को जरा भी आंच पहुंचे।[142]

सदस्यों को भाषण करने के अधिकार का उपयोग सदन के कार्य में बाधा डालने के प्रयोजन से नहीं करना चाहिए।[143]

सभापीठ की पूर्व अनुमति के बिना कोई सदस्य सदन में लिखित भाषण नहीं पढ़ सकता यद्यपि वह टिप्पणों का सहारा ले सकता है।[144]

यदि कोई सदस्य सदन में उपस्थित हो तब किसी दूसरे सदस्य को उसका भाषण पढ़ने की अनुमति नहीं दी जाती।[145]

किसी सदस्य को दूसरे सदस्य की नीयत पर आरोप लगाकर या उसकी सदाशयता पर संदेह व्यक्त करके तब तक कोई व्यक्तिगत उल्लेख नहीं करना चाहिए जब तक ऐसा करना अत्यंत आवश्यक न हो और ऐसे मुद्दे पर ही बहस न हो रही हो या जब तक मुद्दा बहस से संबंधित न हो।[146]

इस संबंध में अत्यधिक सतर्कता बरती जानी चाहिए कि सदन में वक्रोक्तियों तथा आपत्तिजनक और असंसदीय शब्दों का प्रयोग न किया जाए। यदि सभापीठ की राय में कोई शब्द या शब्दावली असंसदीय हो तो उसे तत्काल वापस ले लिया जाना चाहिए और उसके बारे में कोई बहस करने की कोशिश नहीं की जानी चाहिए। सभापीठ द्वारा जिन शब्दों को असंसदीय ठहराया जाता है और कार्यवाही से निकाले जाने का आदेश दिया जाता है उनका मुद्रित वाद-विवाद में उल्लेख नहीं किया जाता।[147]

सदस्यों को प्रथानुसार परामर्शी समितियों की बैठकों की कार्यवाही या उनके दौरान उठाए गए मुद्दों का उल्लेख नहीं करना चाहिए।

> वित्त (संख्या 2) विधेयक, 1980 पर हो रही बहस में भाग लेते हुए एक सदस्य ऐसे दस्तावेज से उद्धरण देना चाहते थे जो वित्त मंत्रालय से संबंधित संसदीय परामर्शी समिति के सदस्यों में परिचालित किया गया था। इस पर आपत्ति किए जाने पर उपसभाध्यक्ष ने सदस्य को सलाह दी कि वे परामर्शी समिति का उल्लेख किए बिना अपनी बात को दूसरे तरीके से कहें। उनका कहना था:
>
> > ...सामान्यत: हम परामर्शी समितियों के दस्तावेजों और उनकी चर्चाओं का उल्लेख नहीं करते। अत: परामर्शी समिति की बात किए बिना आप यह बता सकते हैं कि वित्त मंत्री ने क्या कहा था।...परामर्शी समिति को बीच में न लाएं।[148]
>
> 21 अगस्त, 1990 को रक्षा मंत्रालय में राज्य मंत्री (डा॰ राजा रामन्ना) ने सदन को सूचित किया कि प्रधान मंत्री अपराह्न 5 बजे भारत-पाकिस्तान सीमा पर गोलीबारी की घटना के बारे में एक वक्तव्य देंगे क्योंकि ''यह विषय कुछ महत्त्व का है।'' एक सदस्य द्वारा आपत्ति किए जाने पर उन्होंने ''कुछ महत्त्व का है'' शब्दों के प्रयोग को स्पष्ट करते हुए कहा कि (रक्षा संबंधी) परामर्शी समिति की बैठक में कुछ सदस्यों ने बहिर्गमन

किया था। सदस्यों ने दलील दी कि सुस्थापित प्रथा के अनुसार परामर्शी समितियों की कार्यवाही से संबंधित मामलों का सदन में उल्लेख नहीं किया जाना चाहिए। मामले के संबंध में कुछ विवाद हुआ। बाद में मंत्री ने क्षमा-याचना की।[149]

27 मार्च, 1995 को श्रम मंत्री ने एक ध्यानाकर्षण के उत्तर में दिए गये एक लिखित वक्तव्य में 14 दिसम्बर, 1994 को हुई श्रम मंत्रालय की परामर्शी समिति की बैठक में हुई चर्चा का उल्लेख किया। जब इस पर आपत्ति की गई तब उन्होंने अपने वक्तव्य में से उन लगभग दो पैराओं का लोप कर दिया जिनमें परामर्शी समिति के बारे में उल्लेख किया गया था।[150]

किंतु एक बार श्रम मंत्रालय की सलाहकार समिति की बैठक के रद्द किए जाने का मामला सदन में उठाया गया था।[151]

सदस्यों के विरुद्ध आरोप

किसी सदस्य को किसी अन्य सदस्य या लोक सभा के किसी सदस्य के विरुद्ध तब तक मानहानिकारक या अभियोगात्मक आरोप नहीं लगाने चाहिए जब तक उसने सभापति और संबंधित मंत्री को भी इसकी पूर्व सूचना न दी हो। यदि सभापति की राय में ऐसा आरोप सदन की गरिमा को घटाने वाला हो तो वह सदस्य को ऐसा आरोप लगाने से मना कर सकते हैं।[152]

एक ध्यानाकर्षण पर चर्चा के दौरान एक सदस्य ने कहा कि तीन व्यक्तियों ने, जिनके नाम दिए गए हैं, और एक संसद्-सदस्य ने सूत का कोटा हथिया लिया है। अगले दिन उन्होंने यह कहते हुए अपने कथन पर खेद प्रकट किया: ''संसद्-सदस्य के रूप में अपने 15 वर्षों के कार्यकाल में मैंने ऐसा नहीं किया है। एक संसद्-सदस्य के रूप में मुझे उन्मुक्ति मिली हुई है और मैंने अपने विशेषाधिकार का दुरुपयोग किया है।''[153]

प्रश्नों को सभापीठ के माध्यम से पूछा जाना

यदि कोई सदस्य ऐसे मामले के बारे में, जो सदन के समक्ष हो, कुछ कहना चाहता है या सदन में विचाराधीन किसी विषय पर किसी अन्य सदस्य से, जो बोल रहा हो, स्पष्टीकरण के प्रयोजन के लिए कोई प्रश्न पूछना चाहता है तो उसे सभापीठ के माध्यम से ऐसा करना चाहिए।[154]

सदन में बोलते समय किसी सदस्य को दूसरे सदस्य को संबोधित करके कोई बात नहीं कहनी चाहिए बल्कि उसे हमेशा सभापीठ को संबोधित करना चाहिए और सदस्यों को अपनी बात सभापीठ के माध्यम से कहनी चाहिए। यह वांछनीय है कि जहां तक व्यावहारिक हो, किसी सदस्य का नाम लेकर उल्लेख नहीं किया जाना चाहिए किंतु किसी अन्य समुचित रीति से उसका उल्लेख किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए ऐसा कहा जा सकता है: ''जो सदस्य पहले बोल चुके हैं'', ''अमुक राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य'', ''अमुक राज्य से जो सदस्य आए हैं'' आदि। यदि आवश्यक हो तो पूरा नाम लिया जा सकता है। इसी प्रकार मंत्रियों का उल्लेख उनके पदनाम के द्वारा किया जाना चाहिए, नाम लेकर नहीं।[155]

असंगत बातें कहना या बार-बार एक ही बात कहना

यदि सभापीठ को यह अनुभव होता है कि भाषण कर रहा सदस्य लगातार असंगत बातें कहता जा रहा है या बहस में अपनी ही दलीलों या अन्य सदस्यों द्वारा दी गई दलीलों की उकताऊ पुनरावृत्ति करता जा रहा है तो वह उस सदस्य को अपना भाषण बंद करने को कह सकते हैं।[156]

एक बार ध्यानाकर्षण पर बोल रहे किसी सदस्य को उपसभापति द्वारा बार-बार चेतावनी दी गई थी कि वे ध्यानाकर्षण के विषय से संबंधित बातों के अलावा और बातें न कहें। जब सदस्य असम्बद्ध बातों पर बोलते

रहे तब उपसभापति ने आदेश दिया कि सदस्य के भाषण के बाकी भाग को अभिलिखित नहीं किया जाएगा। कुछ सदस्यों ने इस आदेश पर आपत्ति की। उपसभापति ने अपने आदेश के समर्थन में नियम 259 का हवाला दिया। एक सदस्य ने इस पर भी विवाद किया। एक अन्य सदस्य का कहना था कि अति हो जाने वाले मामले में ही इस शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। उपसभापति ने अपनी व्यवस्था देते हुए कहा कि पीठासीन अधिकारी उस समय इस शक्ति का प्रयोग कर सकता है जब तीन या चार बार चेतावनी देने के बाद भी कोई सदस्य अपने भाषण के दौरान लगातार असंबद्ध बातें करता जा रहा हो अन्यथा सदन की कार्यवाही को चलाना असंभव हो जाएगा। उन्होंने अंत में यह कहा: ''किंतु सदस्यों को कुछ अनुशासन का पालन तो करना ही चाहिए। तब ऐसी स्थिति पैदा नहीं होगी।''[157]

सभापति के खड़े होने की प्रक्रिया

जब सभापति बोलने के लिए खड़ा हो तब सदस्यों को उसे शांतिपूर्वक सुनना चाहिए और यदि कोई सदस्य उस समय बोल रहा हो या बोलने वाला हो तो उसे बैठ जाना चाहिए। जब सभापति सभा को संबोधित कर रहा हो तब किसी सदस्य को अपना स्थान नहीं छोड़ना चाहिए।[158]

यह एक सुविदित और सर्वमान्य संसदीय परंपरा है कि जब सभापति पीठासीन होने के लिए सदन में प्रवेश करता है या बोलने के लिए खड़ा होता है या 'शांति' बनाए रखने के लिए कहता है तब सदस्यों को तत्काल अपना स्थान ग्रहण कर लेना चाहिए।[159] इसका अर्थ यह है कि जब सभापति सदन को संबोधित कर रहा हो तब सदस्यों को कोई औचित्य प्रश्न नहीं उठाना चाहिए।

एक बार जब एक सदस्य ने एक विशेषाधिकार प्रश्न उठाना चाहा तब उपसभापति ने खड़े होकर कहा कि सदस्य ने सदन में जो तथ्य पेश किए हैं उन्हें सभापीठ के कक्ष में पेश किया जा चुका है। जब कई सदस्य एक साथ बोलने के लिए एकदम खड़े हो गए जब उपसभापति खड़ी हुईं और उन्होंने कहा: ''...यह बहुत अशोभनीय है। जब पीठासीन व्यक्ति बोलने के लिए खड़ा हो तब सभी सदस्यों को अपना स्थान ग्रहण कर लेना चाहिए। मुझे आशा है कि ऐसी स्थिति इस सदन में कभी पुन: उत्पन्न नहीं होगी।''[160]

एक बार जब कई सदस्य खड़े हो गए और उन्होंने सभापति के इस अनुरोध पर कोई ध्यान नहीं दिया कि वे अपना स्थान ग्रहण कर लें, तब सभापति ने खड़े होकर कहा: ''यदि मैं खड़ा हूं और तब भी कोई सदस्य बोलता है तो वृत्तलेखकों (रिपोर्टरों) को मेरी हिदायत है कि वे उस सदस्य के कथन को कार्यवाही में से बिल्कुल निकाल दें।''[161]

सदन के समक्ष विचाराधीन मामलों में सदस्यों का व्यक्तिगत हित होना

यद्यपि राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में ऐसा कोई विनिर्दिष्ट नियम नहीं है जिसके अनुसार सदन या उसकी किसी समिति की कार्यवाही में भाग लेने वाले सदस्यों के लिए सदन या समिति के समक्ष विचाराधीन किसी मामले में अपने व्यक्तिगत धन-संबंधी या प्रत्यक्ष हित को प्रकट करना आवश्यक हो तथापि औचित्य की दृष्टि से उन सदस्यों से अपेक्षा की जाती है कि वे ऐसी कार्यवाही में भाग लेने या न लेने का स्वयं निर्णय करने के पहले ऐसे हितों को प्रकट करेंगे।

विशेषाधिकार समिति एक पत्र के विरुद्ध एक संसद्-सदस्य द्वारा विशेषाधिकार भंग की शिकायत पर विचार कर रही थी। स्वयं उनके निवेदन पर समिति इस पर सहमत हो गई कि चूंकि आपत्तिजनक टिप्पणियों में सदस्य पर व्यक्तिगत आक्षेप किए गए हैं इसलिए उनके लिए समिति के एक सदस्य के रूप में समिति के विचार-विमर्श में भाग लेना उचित नहीं होगा।[162]

एक दूसरे मामले में जब विशेषाधिकार समिति किसी कंपनी की प्रेस विज्ञप्ति से होने वाले विशेषाधिकार भंग की शिकायत पर विचार कर रही थी, समिति के सदस्य ने आंरभ में ही यह कहा कि चूंकि उनका संबंध ऐसे

अनेक कानूनी मामलों से रहा है जिनमें यह कंपनी अंतर्ग्रस्त है, इसलिए उनके लिए यह उचित नहीं होगा कि वे समिति के सदस्य के रूप में उसकी कार्यवाही में भाग लें। अत: वे समिति की अनुमति से उसकी बैठक से हट गए।[163]

प्रतिभूति घोटाला संबंधी संयुक्त संसदीय समिति के प्रतिवेदन पर 30 दिसम्बर, 1993 को हुई अल्पकालिक चर्चा के दौरान एक सदस्य ने अपने भाषण के आंरभ में इस तथ्य का उद्घाटन किया कि वे घोटाले में अंतर्ग्रस्त मुख्य अभियुक्त के साथ व्यावसायिक रूप से सम्बद्ध रहे हैं और उन्होंने स्वयं पर स्वेच्छा से यह रोक लगाई है कि वे विवाद के उस अंश पर कोई टिप्पणी नहीं करेंगे जिसका अभियुक्त से जरा भी संबंध हो।[164]

31 अगस्त, 2001 को सभापति ने सभा में वाद-विवाद में भाग लेते समय एक सदस्य के धन संबंधी अथवा अन्य हित से संबंधित मुद्दे पर सभा में व्यवस्था दी। सभापति ने कहा:

''जबकि यह सच है कि इस समय ऐसा कोई नियम नहीं है जो इस सभा के सदस्य को जनहित के विषय पर बोलने से केवल इसलिए रोकता हो क्योंकि इससे ऐसे व्यक्ति का मामला प्रभावित होता है जो इस या उस मामले में सदस्य का क्लाइंट है, प्रश्न अन्तत: औचित्य का है और मैं समझता हूं कि सभा मुझसे इस बात पर सहमत होगी कि इसे संबंधित सदस्य की समझ पर छोड़ दिया जाना चाहिए।''[165]

सदस्यों द्वारा सभा के समक्ष विचाराधीन किसी मामले में प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष अथवा विशेष धन-संबंधी हित की घोषणा को इस संबंध में कोई नियम न होने की स्थिति में एक समुचित परिपाटी के रूप में स्वीकार किया गया है। राज्य सभा की आचार समिति के दूसरे प्रतिवेदन में इस पहलू को भी प्रमुखता से दर्शाया गया है। प्रतिवेदन के पैरा 6 में कहा गया है:

ऐसे अवसर आते हैं जब सभा अथवा उसकी समिति द्वारा विचार किए जा रहे किसी मामले में सदस्य का प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष अथवा विशेष धन-संबंधी हित हो सकता है। ऐसे मामले में वह रजिस्टर में उसके हितों के किसी पंजीकरण के बावजूद ऐसे हित के स्वरूप की घोषणा कर सकता है और ऐसी घोषणा करने से पूर्व सभा अथवा उसकी समितियों में होने वाले ऐसे किसी वाद-विवाद अथवा मतदान में भाग नहीं लेगा।[166]

सदस्यों के लिए आचार संहिता[167]

राज्य सभा के सदस्यों को जनता द्वारा उनमें प्रकट किए गए विश्वास को बनाए रखने की अपनी जिम्मेदारी को स्वीकार करना चाहिए और लोगों की भलाई के लिए उन्हें मिले जनादेश का पालन करने के लिए कड़ी मेहनत करनी चाहिए। उन्हें संविधान, कानून, संसदीय संस्थाओं और सबसे बढ़कर आम जनता के प्रति पूर्ण सम्मान रखना चाहिए। उन्हें संविधान की प्रस्तावना में दिए गए आदर्शों को वास्तविकता में परिवर्तित करने के लिए निरन्तर प्रयास करना चाहिए। उन्हें अपने कामकाज में निम्नलिखित सिद्धांतों का पालन करना चाहिए:

(i) सदस्यों को कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे संसद् की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचे और उनकी विश्वसनीयता प्रभावित हो।

(ii) सदस्यों को संसद्-सदस्य के रूप में अपनी हैसियत का उपयोग आम जनता के कल्याणार्थ करना चाहिए।

(iii) अपने व्यवहार के दौरान यदि संसद्-सदस्यों को यह पता चलता है कि उनके निजी हितों और जनता द्वारा व्यक्त किए गए उन पर विश्वास के बीच कोई टकराव होता है तो इस टकराव से

उन्हें इस प्रकार से निपटना चाहिए कि उनके निजी हित, सार्वजनिक जीवन के उनके कर्त्तव्यों से आगे न निकल जाएं।

(iv) सदस्यों को इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि उनके तथा उनके निकट परिवार* के व्यक्तिगत वित्तीय हित और सार्वजनिक हितों के बीच कोई टकराव न हो, और यदि कभी भी इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होती है तो उन्हें उसका इस प्रकार से समाधान निकालना चाहिए जिससे सार्वजनिक हितों की हानि न हो।

(v) सदस्यों को कभी भी विधेयक के पुर:स्थापन, किसी संकल्प को प्रस्तुत करने या न करने, प्रश्न पूछने या न पूछने हेतु सभा में मत देने अथवा मत न देने अथवा सभा या किसी संसदीय समिति की चर्चा में भाग लेने के लिए किसी शुल्क, पारिश्रमिक अथवा लाभ की आशा नहीं करनी चाहिए अथवा स्वीकार नहीं करना चाहिए।

(vi) सदस्यों को कोई ऐसा उपहार नहीं लेना चाहिए जिससे उनके सरकारी कर्त्तव्यों के ईमानदारी-पूर्वक तथा निष्पक्षभाव से अनुपालन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो। तथापि, वे प्रासंगिक उपहार या सस्ते स्मृति चिह्न या पारम्परिक आतिथ्य स्वीकार कर सकते हैं।

(vii) सार्वजनिक पदों पर कार्यरत सदस्यों को सार्वजनिक संसाधनों का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए जिससे जनहित होता हो।

(viii) यदि संसद्-सदस्य या किसी संसदीय समिति का सदस्य होने के नाते सदस्यों के पास कोई गोपनीय सूचना हो, तो उन्हें उसका उद्घाटन व्यक्तिगत हितों के लिए नहीं करना चाहिए।

(ix) सदस्यों को ऐसे व्यक्तियों तथा संस्थाओं को प्रमाण-पत्र देने से बचना चाहिए जिनके संबंध में उन्हें व्यक्तिगत जानकारी नहीं है तथा जो तथ्यों पर आधारित नहीं हैं।

(x) सदस्यों को ऐसे किन्हीं मुद्दों का तत्काल समर्थन नहीं करना चाहिए जिनके बारे में उन्हें कोई जानकारी नहीं है अथवा मामूली जानकारी है।

(xi) सदस्यों को उन्हें प्रदान की गई सुविधाओं तथा सुख सुविधाओं का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

(xii) सदस्यों को किसी भी धर्म का अनादर नहीं करना चाहिए तथा धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के संवर्धन हेतु कार्य करना चाहिए।

(xiii) सदस्यों को संविधान के भाग (IV)क में सूचीबद्ध मौलिक कर्त्तव्यों को सर्वोपरि ध्यान में रखना चाहिए।

(xiv) सदस्यों से सार्वजनिक जीवन में नैतिकता, मर्यादा, शालीनता तथा मूल्यों का उच्च स्तर बनाये रखने की आशा की जाती है।

---

*निकट परिवार में पति/पत्नी, आश्रित पुत्रियां और आश्रित पुत्र शामिल हैं।

टिप्पणियां और संदर्भ

1. हैंडबुक फॉर मेम्बर्स ऑफ राज्य सभा (1991 संस्करण), पैरा 32, 33
2. संसदीय समाचार (2), 8.5.1952
3. काउंसिल ऑफ स्टेट्स डिबेट्स, 16.5.1952, कॉलम 31-32
4. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.9.1976, कॉलम 8–37
5. यशवन्तराव मेघावले **बनाम** मध्य प्रदेश विधान सभा, ए॰ आई॰ आर॰ 1967, एम॰ पी॰ 95
6. आई॰ एल॰ आर॰ (1977) 2, पंजाब और हरियाणा, 269
7. ऐन एनसाइक्लोपीडिया ऑफ पार्लियामेंट, नोर्मन वाइल्डिंग और फिलिप लौंडी द्वारा, लंदन, कैसल एंड कंपनी लि॰, 1958, पृष्ठ 494
8. राज्य सभा वाद-विवाद, 7.4.1971, कॉलम 109–209
9. -वही- 17.8.1955, कॉलम 188
10. -वही- 19.2.1963, कॉलम 81–91
11. संसदीय समाचार (1), 22.2.1978
12. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.3.1979, कॉलम 19–21
13. -वही- 26.4.1988, कॉलम 301; 27.4.1988, कॉलम 190–91
14. नियम 255
15. राज्य सभा वाद-विवाद, 9.11.1987, कॉलम 3-4
16. -वही- 25.7.1989, कॉलम 21
17. -वही- 27.7.1989, कॉलम 216–26
18. नियम 256(1)
19. नियम 256(2)
20. राज्य सभा वाद-विवाद, 3.9.1962, कॉलम 4651–55
21. -वही- 10.9.1966, कॉलम 6405 और 6407
22. -वही- 25.7.1966, कॉलम 135–39; 26.7.1966, कॉलम 248–61
23. -वही- 16.11.1966 कॉलम 1410-11
24. -वही- 14.12.1967, कॉलम 4059–64
25. -वही- 12.8.1971, कॉलम 147–50
26. -वही- 24.7.1974, कॉलम 207–21; 25.7.1974, कॉलम 188–91
27. -वही- 29.7.1987, कॉलम 1–4

27क. संसदीय समाचार (2), 13.12.2005

28. मे, पार्लियामेंटरी प्रैक्टिस (19वां संस्करण), पृष्ठ 132
29. संसदीय समाचार (1), 15.11.1976

29क. संसदीय समाचार (2), 23.12.2005

29ख. -वही- 21.3.2006

30. हैंडबुक, 1991 पैरा 32(1)
31. -वही- 2002, पैरा 33(1)
32. -वही- 1991, पैरा 32(3)
33. -वही- 2002, पैरा 33(2)
34. -वही- 1991, पैरा 32(5)
35. -वही- पैरा 32(6)
36. -वही- पैरा 32(7) तथा (8)
37. -वही- 2002, पैरा 33(5)
38. -वही- पैरा 33(6)
39. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.2.1970, कॉलम 123
40. -वही- 25.2.1970, कॉलम 123 तथा 26.2.1970, कॉलम 141-42
41. हैंडबुक, 2002, पैरा 33(3) तथा (4)
42. -वही- पैरा 33(7) (8) तथा (9)
43. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.7.1969, कॉलम 1452
44. -वही- 1.5.1968, कॉलम 620-21, 2.5.1968, कॉलम 777
45. -वही- 14.8.1968, कॉलम 3388-90
46. -वही- 19.8.1968, कॉलम 3477
47. -वही- 16.12.1981, कॉलम 130-31
48. -वही- 11.3.1986, कॉलम 266
49. -वही- 12.3.1986, कॉलम 121-22
50. फाइल सं॰ 41/1/92-एल
51. हैंडबुक, 1991, पैरा 33(1)
52. -वही- 2002, पैरा 33(13), (16) और (17)
53. -वही- पैरा 33(30)
54. राज्य सभा वाद-विवाद, 13.12.1974, कॉलम 129
55. नियम 235(iii)
56. नियम 235(iv) तथा हैंडबुक, 2002, पैरा 33(14)
57. राज्य सभा वाद-विवाद, 9.8.1952, कॉलम 3622
58. हैंडबुक, 2002, पैरा 33(15)
59. राज्य सभा सचिवालय 1988 द्वारा प्रकाशित ''डा॰ सर्वपल्ली राधाकृष्णन्–ए कोमेमोरेटिव वोल्यूम'' में लक्ष्मी एन॰ मेनन का लेख, पृष्ठ 70 **देखिए**
60. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.4.1981, कॉलम 26
61. -वही- 24.3.1982, कॉलम 164-65
62. -वही- 9.12.1985, कॉलम 17
63. नियम 235(i) तथा हैंडबुक, 2002, पैरा 33(18)

64. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.2.1981, कॉलम 16
65. नियम 235(ii) और (ix)
66. नियम 235(viii)
67. हैंडबुक, 2002 पैरा 33(19)
68. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.7.1952, कॉलम 1379-80
69. हैंडबुक, 2002, पैरा 33(33)
70. -वही- पैरा 33 (41)
71. राज्य सभा वाद-विवाद, 19.3.1965, कॉलम 3720
72. -वही- 20.3.1975, कॉलम 161
73. -वही- 24.7.1974, कॉलम 205-06
74. हैंडबुक, 2002, पैरा 33(20)
75. -वही- पैरा 33(25)
76. -वही- पैरा 33(26)
77. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.3.1969, कॉलम 3151
78. हैंडबुक, 2002, पैरा 33(31)
79. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.4.1955, कॉलम 6279, 6300
80. हैंडबुक, 2002, पैरा 33(36)
81. -वही- पैरा 33(38)
82. -वही- पैरा 33(48)
83. -वही- पैरा 33(49)
84. -वही- पैरा 33(34); उदाहरणार्थ संसदीय समाचार (2), 28.7.1995
85. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.1.1980, कॉलम 17
86. हैंडबुक, 2002 पैरा 33(45)
87. -वही- पैरा 33(46)
88. -वही- पैरा 33(50)
89. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.8.1968, कॉलम 3866
90. -वही- 23.8.1968, कॉलम 4256
91. हैंडबुक, 2002, पैरा 33(51)
92. राज्य सभा वाद-विवाद, 13.9.1963, कॉलम 4045
93. हैंडबुक, 2002, पैरा 33(52)
94. -वही- पैरा 33(10) और (11)
95. राज्य सभा वाद-विवाद, 28.7.1983, कॉलम 199
96. -वही- 17.8.1984, कॉलम 3
97. -वही- 6.5.1985, कॉलम 190–92
98. -वही- 21.5.1990, कॉलम 186–92, 197-98

99. राज्य सभा वाद-विवाद, 7.5.1986, कॉलम 141
100. -वही- 23.11.1981, कॉलम 221–23
101. -वही- 28.4.1983, कॉलम 295
102. -वही- 26.7.1983, कॉलम 9
103. -वही- 20.12.1983, कॉलम 233-34
104. -वही- 8.8.1977, कॉलम 10, 82 और 9.8.1977, कॉलम 26
105. -वही- 24.2.1984, कॉलम 294-95
106. -वही- 14.5.1986, कॉलम 8
107. -वही- 6.8.1985, कॉलम 299
108. -वही- 24.7.1986, कॉलम 188
109. -वही- 25.7.1986, कॉलम 163-64
110. -वही- 5.5.1989, कॉलम 327
111. संसदीय समाचार (2), 28.7.1995
112. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.8.1972, कॉलम, 115-16
113. -वही- 23.5.1957, कॉलम 1286
114. -वही- 18.3.1961, कॉलम, 3434
115. -वही- 28.9.1955, कॉलम 5037
116. नियम 236
117. हैंडबुक, 1991, पैरा 36iv
118. नियम 237
119. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.3.1955, कॉलम 2226
120. -वही- 28.4.1964, कॉलम 847
121. नियम 238(i) और हैंडबुक, 2002, पैरा 33 [42(क)]
122. नियम 238(ii) और हैंडबुक, 2002, पैरा 33 [42(ख)]
123. राज्य सभा वाद-विवाद, 31.8.1966, कॉलम 4844–47
124. -वही- 1.9.1966, कॉलम 5045–5101
125. -वही- 2.9.1966, कॉलम, 5267
126. -वही- 7.9.1966, कॉलम 5969-70
127. नियम 238(iii) और हैंडबुक, 2002, पैरा 33 [42(ग)]
128. राज्य सभा वाद-विवाद, 23.6.1962, कॉलम 1741-42
129. -वही- 25.7.1966, कॉलम 113–24
130. -वही- 27.3.1980, कॉलम, 375–78
131. नियम 238(iv) और हैंडबुक, 2002, पैरा 33 [42(घ)]
132. नियम 238(v) और हैंडबुक, 2002, पैरा 33 [42(ज)]
133. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.12.1954, कॉलम 3091–93

134. राज्य सभा वाद-विवाद, 7.5.1953, कॉलम 5175–78

135. संसदीय समाचार (2), 18.8.1989

136. फाइल सं॰ 35/31/89-एल

137. नियम 238(vi) तथा हैंडबुक, 2002, पैरा 33 [42(ङ)]; राज्य सभा वाद-विवाद, 7.6.1971, कॉलम 23

138. राज्य सभा वाद-विवाद, 12.5.1970, कॉलम 162-69

139. -वही- 7.6.1971, कॉलम 23

140. नियम 238(vii) और हैंडबुक, 2002, पैरा 33 [42(च)]

141. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.8.1961, कॉलम 1243-44

142. -वही- 21.7.1971, कॉलम 104–07

143. नियम 238(viii) और हैंडबुक, 2002, पैरा 33 [42(छ)]

144. हैंडबुक, 2002, पैरा 33(23)

145. -वही- पैरा 33(24)

146. -वही- पैरा 33(29)

147. नियम 261, 262 तथा हैंडबुक, 2002, पैरा 33(39)

148. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.8.1980, कॉलम 227-28

149. -वही- 21.8.1990, कॉलम 269–76

150. -वही- 27.3.1995, कॉलम 258

151. -वही- 8.1.1991, कॉलम 369-73

152. नियम 238क

153. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.2.1973, कॉलम 127 तथा 28.2.1973, कॉलम 211

154. नियम 239

155. हैंडबुक, 2002, पैरा 33(32) तथा (27)

156. नियम 240

157. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.8.1974, कॉलम 128–35

158. नियम 243, 235(v)

159. हैंडबुक, 2002, पैरा 33(21)

160. राज्य सभा वाद-विवाद, 12.2.1964, कॉलम 218-19; राज्य सभा वाद-विवाद, 25.7.1989, कॉलम 2 भी **देखिए**

161. -वही- 23.7.1980, कॉलम 14–16

162. विशेषाधिकार समिति का तीसरा प्रतिवेदन

163. विशेषाधिकार समिति का अट्ठाईसवां प्रतिवेदन, दिनांक 9.4.1991 का कार्यवृत्त

164. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.12.1993, कॉलम 226

165. -वही- 31.8.2001, पृष्ठ 1-2

166. 13-12-1999 को प्रस्तुत तथा 15.12.1999 को स्वीकृत राज्य सभा की आचार समिति का दूसरा प्रतिवेदन

167. हैंडबुक, 2002, पैरा 34, 8.12.1998 को प्रस्तुत तथा 15.12.1999 को स्वीकृत राज्य सभा की आचार समिति का पहला प्रतिवेदन भी **देखिए**